ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

(नवम भाग)

हमारा भोजन

लेखक :

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

प्रस्तुति :

दुर्लभ ज्ञान

ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

(नवम भाग)

हमारा भोजन

लेखक :

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

ब्रह्मचर्य के साधन

हमारा भोजन (नवम भाग)

भूमिका

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'

धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह पुरुपार्थचतुष्टय मानव जीवन का उद्देश्य है। इस पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि का मूलकारण आरोग्य है। शरीर यदि स्वस्थ नहीं है, रोगी है, तो पुरुषार्थचतुष्टय की तो क्या बात, शौच स्नानादि नित्यकर्मों का अनुष्ठान भी भलीभांति नहीं किया जासकता। रोगी स्वयं दूसरों पर भार होता है, वह किसी की क्या सेवा या उपकार कर सकता है तथा क्या धर्म कमा सकता है। इसलिए शरीर की स्वस्थता को पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिए हमारे शास्त्रकारों ने सर्वप्रथम और मुख्य स्थान दिया है।

जीवन का चरम लक्ष्य, अन्तिम ध्येय मोक्षप्राप्ति ही है और उसकी प्राप्ति आत्मा इस शरीररूपी रथ पर सवार होकर करता है। यदि शरीररूपी रथ स्वस्थ और दृढ़ नहीं है तो मार्ग में ही जीर्ण शीर्ण होजायेगा तथा आत्मा अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं करसकेगा। आवागमन के चक्र से न छूटकर दुःखसागर में गोता लगायेगा। अतः आवश्यक है कि हमारा शरीररूपी रथ, जीवनयात्रा का साधन, स्वस्थ दृढ़ और सुगठित हो।

''आहारवैषम्यादस्वास्थ्यम्'' (सु०सू०अ० ४६)

भोजन की विषमता से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने के लिए भोजन का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि यह पांचभौतिक शरीर भोजन के द्वारा ही हृष्ट-पुष्ट और दृढ़ाङ्ग होता है। शरीर का उपचय अपचय=वृद्धि और ह्रास भोजन पर ही निर्भर है। यदि शरीर को यथासमय उचित भोजन मिलता रहता है तो शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बन जाता है अन्यथा स्वास्थ्य गिर जाता है।

भोजन जैसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना अपने जीवन की उपेक्षा करना है, भोजन के विषय में अज्ञान रखना मानो अपने जीवन

नवम भाग

हमारा भोजन

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है, रोगी रहना किसी को नहीं भाता। स्वास्थ्य और भोजन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचारशील मनुष्य तथा जातियां इसके महत्त्व को भलीभांति समझते हैं। हमारे प्राचीन पुरुष भोजन के महत्त्व से भलीभांति परिचित थे, अतः वे इस विषय में बड़े सावधान रहते थे। आज हम उनकी संतान भोजन के विषय में किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं रखते।

दैनिक आहार का हमारे स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, मन, बुद्धि और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है यह तो हम कभी विचारने का कष्ट भी नहीं करते। शुद्धाहार से ही मनुष्य का सब कुछ बनता तथा मिथ्याहार से सर्वनाश होजाता है। इस पर हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने गम्भीरता से विचार ही नहीं अपितु पूर्णरूप से अनुभव किया था। इसी कारण उन्होंने अपनी खोज के आधार पर शुद्धाहार की बड़ी प्रशंसा की है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।

आहार के शुद्ध होने से अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि आदि की शुद्धि होती है, बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ वा स्थिर होजाती है, स्मृति के दृढ़ होने पर सब (हृदय की) गांठें खुलजाती हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन ढीले होजाते हैं। अविद्या-अन्धकार मिटकर मनुष्य सब दासता की शृंखलाओं से छुटकारा पाता है और परमपद मोक्ष की ओर पग बढ़ाता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि शुद्धाहार से मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं। अतः योगिराज श्रीकृष्ण जी ने इसी भाव को गीता में निम्नलिखित प्रकार से प्रकट किया है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। (६-१७)

यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, यथोचित कर्म करनेवाले, उचितमात्रा में निद्रा और जागरण करनेवाले का यह योग दुःखनाशक होता है अर्थात् युक्त आहार-विहार आदि के सेवन से मनुष्य के सब दुःख दूर होजाते हैं।

भोजन की आवश्यकता सभी प्राणियों को है, कीट पतंग से लेकर सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य तक इसी भोजन के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। इस युग के मनुष्य

को अन्धेरे में रखना है। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार-विवेचन किया है। किस पदार्थ के क्या गुण हैं और वह भी किस अवस्था में लाभदायक अथवा हानिप्रद है। देश, काल और प्रकृतिभेद से हमारे शास्त्रकारों ने भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों की पूर्ण मीमांसा की है। इसलिए जब हमारा देश शास्त्रविहित भोजन करता था तब संसार में सभी दृष्टियों से शिरोमणि था। किन्तु दुःख है कि आज हम शास्त्रों को भूलगये, इसलिए अनेक कुरीतियां भोजन के विषय में प्रचलित होगई हैं। मद्य, मांस, लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्यपदार्थों का भी निःसंकोच होकर सेवन किया जाता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि हम भोजन के मूल उद्देश्य को ही भूल गये, हमारा भोजन जीवन के लिए नहीं, अपितु जीवन ही भोजन के लिए बन गया है। भोजन के परखने की कसौटी केवल जिह्वा रहगई है और यह पिशाचिनी इतनी लोलुप होगई है कि इसने सर्वनाश ही करडाला।

भोजन बिगड़ने और असंयमित होने से ब्रह्मचर्यपालन और संयमितजीवन का अभाव होता जारहा है। विषयवासना, शृंगार और व्यभिचार की भट्ठी इतनी प्रचण्ड होकर धधक रही है कि इस ऋषियों की पवित्रभूमि भारत को ही नहीं, अपितु समस्त विश्व को ही भस्मसात् करदेना चाहती है।

ऐसे विकटकाल में यह छोटासा किन्तु सारगर्भित पुस्तक 'भोजन' कुछ भी पथ-प्रदर्शन करसका तो हमारा परिश्रम सफल है, देश का भविष्य उज्ज्वल है।

इसमें भोजनसम्बन्धी अनेक भ्रान्तधारणाओं और प्रथाओं का खण्डन किया गया है। बहुतसी ऐसी बातें भी पाठक महानुभावों को मिलेंगी जो सर्वथा नवीन प्रतीत होती हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने से तत्त्वज्ञान होगा। हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी और सुन्दन बनान का यत्न किया है, हम अपने कार्य में कहां तक सफल हुए हैं यह तो पाठक महानुभव ही बता सकेंगे।

वैशाख २०३४ वि०
मई १९७७ ई०

ओ३मानन्द सरस्वती
गुरुकुल झज्जर

की सम्पूर्ण शक्ति इसी भोजन जुटाने में लगी हुई है। प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक "हाय भोजन हाय भोजन" करता हुआ दौड़ करता है। यही नहीं, आज मानव का जीवन मरण भी भोजन के लिए ही है। किन्तु हम भोजन क्यों करते हैं इसका उचित उत्तर सहस्रों में से कोई विचारशील व्यक्ति ही देसकता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका उत्तर इस प्रकार दिया है-

आहारः प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः ।। (भाव० ४-१)

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, कान्ति उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है। इससे सिद्ध हुआ कि-

आहार हमारा जीवन है।

क्योंकि भोजन से मनुष्य क्या सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा होती है अत: भोजन की आवश्यकता सभी प्राणधारियों को है अथवा यों कहिए कि प्राणिमात्र के जीवन का आधार खान-पान है यदि हमें भोजन न मिले तो हमारा जीवित रहना असम्भव है। अत: जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक प्राणी जीवनधारणार्थ भोजन ग्रहण करता रहता है और इसी से जीवित रहता है। अत: सर्वप्रथम तथा सर्वोत्तम भोजन का महत्त्व हमारे जीवन में यही है, जिसके बिना हम जीवित नहीं रहसकते। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय में हमारा अन्धेरे में रहना कितनी आश्चर्य तथा मूर्खता की बात है। अपठित जिन्हें जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं, ऐसे लोग इस विषय में न जानते हों तो कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु आज का शिक्षितसमुदाय इस विषय में कोरा है, यह बड़े दु:ख की बात है। अशिक्षित भाई तो कुछ प्राचीनपरम्परा से इस विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान रखते भी हैं किन्तु बड़ी-बड़ी बी.ए., एम.ए., प्रभाकर और शास्त्री आदि डिग्रीधारी शिक्षितों में जीवन के आधार आहार जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के ज्ञान का अभाव हो तो ऐसी दयनीय अवस्था को देख अत्यन्त दु:ख होता है और देश का निकट भविष्य उज्ज्वल दिखाई नहीं देता।

वैसे इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी को है कि भोजन करने के पश्चात् बल उत्साह प्रतीत होता है, भूखे प्राणी में इसका अभाव देखने में आता है। यदि भोजन सर्वथा न किया जाए तो मृत्यु निश्चितरूप से दर्शन देती है, टाले नहीं टलती। यह शरीर के रचयिता अथवा प्रकृति का अटल नियम है। उचित एवं आवश्यक भोजन की प्राप्ति के विना स्वास्थ्यरक्षा अथवा यों कहिये जीवनरक्षा नहीं हो

सकती। इसलिए स्वास्थ्यप्राप्ति तथा जीवनरक्षा के लिए भोजन का भी एक विशेष स्थान है। चरकशास्त्र में इसी विषय में कहा है-

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा।।

शरीर के अन्दर जो अग्नि है उसी के आश्रय से देह में प्राण स्थिर रहते हैं। यह अग्नि बल, आरोग्य और आयु को प्रतिष्ठित करनेवाली है अथवा यह कह सकते हैं कि अन्तराग्नि पर देह की स्थिति है। अन्न-पानरूपी ईन्धन से ही अन्तराग्नि स्थिर रहती है। यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि अन्न-पान के सेवन से आयुपर्यन्त प्राण रहते हैं। इसी विषय में चरकशास्त्र में लिखा है-

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसञ्ज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः, तत्सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते।

कुशल विचारशील पुरुष जो अन्न-पान (भोजन) विधिपूर्वक बनाया गया है, जो अच्छे वर्ण (रङ्ग) गन्ध रस तथा स्पर्शयुक्त है उसे प्राणियों अर्थात् मनुष्यादि देहधारियों के लिए प्राणतुल्य मानते हैं। क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि अन्नपान से प्राणी के प्राण कार्य करते हैं। भोजन न करने से आयु क्षीण होकर मृत्यु होजाती है। अन्न-पान से ही अन्तराग्नि स्थिर रहती है, अन्न और प्राणों को ही नहीं मन को भी बल मिलता है। जब भोजन यथोचित विधि से किया जाता है तो यह शरीर के वातादि (दोषों) का रस, वीर्यादि धातुओं के व्यूह (संघात) को बनानेवाला है। जहां जिस धातु की न्यूनता होती है वहां उसकी भोजन पूर्ति करता है। बल देनेवाला, वर्ण (रंग) को निखारनेवाला, कान्तिदायक और इन्द्रियों को प्रसन्न तथा तृप्त करनेवाला है। विधि से विपरीत सेवन करने से हानिकारक सिद्ध होता है।

आहार से शरीर का विकास और वृद्धि

सभी प्राणी जिस समय जन्म लेते हैं, तत्काल इन्हें क्षुधा सताने लगती है। माता के गर्भ से बाहर आते ही मानव-शिशु तुरन्त ही रोने और बिलखने लगता है और माता का स्तन जहां उसके मुख में आया तथा उसने दुग्धामृत का पान किया, वह तत्काल ही शान्तचित्त हो खेलने लगा वा सो जाता है। क्षुधा की निवृत्ति के साथ ही उसकी व्याकुलता भी भाग जाती है। सभी प्राणियों की ऐसी समानावस्था है।

इस दुग्धापान तथा भोजन के सेवन से सभी प्राणी क्षुधा के शान्त होते ही

जहां शान्त होजाते हैं, वहां इनके शरीर में कुछ ही दिनों में वृद्धि विकास स्पष्टतया दिखाई देने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि जन्म के समय से लेकर युवावस्था तक मनुष्य ही नहीं प्रत्येक प्राणी के शरीर की वृद्धि तथा विकास प्रतिदिन के किए हुए भोजन से होता रहता है अतः हमारे शरीर की सम्यक्तया वृद्धि वा सम्पूर्ण विकास हमारे भोजन पर निर्भर है। यदि हमें भोजन यथोचित रूप से न मिले तो शरीर का विकास भी रुक जायेगा। यदि भोजन सर्वथा न मिले तो विकास के स्थान में ह्रास तथा अन्त में शरीर का नाश ही होजायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आहार जहां जीवन का आधार है वहां विकास वा वृद्धि का भी मुख्य कारण है किन्तु वह भोजन हितकर होना चाहिए। हितकर भोजन के बिना वृद्धि असम्भव है। चरकशास्त्र में लिखा भी है-

'हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति।'

अर्थात् एक हितकर आहार का उपयोग ही पुरुष के शरीर की वृद्धि करता है। वैसे तो जो कुछ खाया जाता है वह आहार (भोजन) कहलाता है। चरकशास्त्र में लिखा है-**'आहारत्वमाहारस्यैकविधमर्थाभेदात्।'** निगरण अर्थात् निगलने की क्रिया सभी आहारों में एक समान है। भिन्न-भिन्न भोजन की वस्तुओं में निगरण के समान होने से सबको आहार कहते हैं। **'आहार्यते गलादधो नीयते इत्याहारः'** गले से नीचे जो लेजाया जाता है उसे आहार कहते हैं। सभी आहार के द्रव्यों में आहारता होती है, किन्तु हमारे लिए हितकर आहार कौनसे हैं यह जानने की वस्तु है। जो आहार शरीर की वृद्धि करे वह हितकर है, यह एक लक्षण तो कर दिया। आगे इसी विषय में लिखा है-

समाँश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति, विषमाँश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, विपरीतमहितमिति, एतद् हिताहितलक्षणमनपवादं भवति।

(चरक सूत्र० अ० २५)

अग्निवेश के पूछने पर भगवान् आत्रेय ने उत्तर दिया-जो आहार समावस्था में स्थित शरीर की वात्त, पित्त, कफ, रक्त, मांस, वीर्यादि धातुओं को प्रकृति अर्थात् साम्यावस्था में ही रखता है, दूषित नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है, विषम (बिगड़े हुए) धातुओं को समावस्था में ले आता है अर्थात् सुधार देता है उस भोजन को हितकर कहते हैं। इससे विपरीत जो समधातुओं को विषम कर (बिगाड़) दे, और विषम अवस्था में रखे अर्थात् बिगड़ी को बिगड़ी ही रहनेदे, उसको अहितकर समझना चाहिए। इस विषय में खोलकर आगे लिखेंगे। विषम और अहितकर भोजन करने से अरुचि, शारीरिक दुर्बलता, कण्डू, पामा, कुष्ठ आदि रोगों की

उत्पत्ति होती है। अङ्गावसाद तथा दोषों के प्रकुपित होने से उस उस देश के अनुसार ग्रहणी अर्श आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक भोजन

यह प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन का अनुभव तथा डाक्टरों का अधिकांश में यही मत है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम सब जिह्वा के दास हैं। हमारी रसना (जिह्वा) सदैव स्वादिष्ट भोजन के लिए लपलपाती रहती है। हम स्वाद के चक्कर में आकर ही अधिक खालेते हैं। पूज्य महात्मा गांधी जी इस विषय में लिखते हैं-"हम लोग इतने पेटू होगये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ट भोजन चाहती है। इसलिए हम लोग अपने मेहमानों को स्वादिष्ट भोजन कराते हैं कि जब हम भी उनके यहां जावेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करावेंगे। यदि हम अधिक खाने के पाप से बचना चाहते हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम किसी भी दावत (विशेष भोजन) में भाग न लें। हमारे यहां जब कोई मेहमान (अतिथि) आजाये तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों का ध्यान रखते हुए खिलाना चाहिए।" किन्तु स्वभाव से यह स्वादुप्रिय मनुष्य स्वादिष्ट भोजनों में जो क्षणिक सुख अनुभव करता है इसी सुख को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है और अपना सारा बहुमूल्य जीवन इस सुख की इच्छापूर्ति में गंवा देता है और यह सब भूल जाता है कि हमारा हित और कल्याण इन स्वादिष्ट भोजनों से होनेवाला नहीं है। इसलिए मनुष्य पेटू बन जाता है। स्वास्थ्य, बल, वीर्य, शक्ति, ब्रह्मचर्य, भाड़ में जायें किन्तु इस चटोरे पेटू मनुष्य को चटपटे और मीठे स्वादिष्ट भोजन चाहिएं। जिह्वा का संयम करनेवाले बहुत थोड़े व्यक्ति देखने में आते हैं। स्वादिष्ट भोजन करना कोई पाप नहीं किन्तु स्वाद के कारण अधिक खाना तथा भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए नमक, मिर्च, मसाले, खटाई आदि हानिकारक पदार्थ डालकर भोजन को बिगाड़कर खाना तो महामूर्खता है। कविराज हरनामदास जी इस विषय में लिखते हैं-'चूर्णों और चटपटी चीजों का चलन बढ़ गया है। बाबू लो गोलगप्पे, इमली की चाट, भल्ले पकोड़ियां एक जगह बैठकर खाजाते हैं। लोगो! होश करो क्यों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हो, ऐसी चीजें हाजमे को बिगाड़ती हैं और जीवन के सार (वीर्य) को दुर्बल करती हैं और सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रहने देतीं। छोटे लड़के जो खटाई खाते हैं उन्हें युवावस्था से पहिले ही कामवासना की उमंग आने लगती है जिनकी आँखें खुली हैं वे ये सब बातें स्पष्ट रीति से देख रहे हैं अधिक क्या लिखूं। ऐसे दृश्यों को देखते हुए मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमारी निर्बलता, हमारे रोग, हमारा

बुढ़ापा, एक सीमा तक खाने-पीने की गरीबी के कारण है। अतः भोजन में बड़ी सावधानता और संयम की आवश्यकता है।

भोजन में संयम

स्वास्थ्यप्रिय व्यक्ति वा ब्रह्मचारी न अधिक खाता है न न्यून, किन्तु शरीर के लिए जितना आवश्यक है ठीक उतनी ही मात्रा में खाता है। अधिक खाना सरल और सर्वथा उपवास करना भी सहज है किन्तु यथोचित (न न्यून न अधिक) खाना अधिक कठिन है। भोजन-समतोलता रखना ही तो ब्रह्मचारी की सच्ची तपस्या है। यही भोजन का संयम है। 'मितभोजनं स्वास्थ्यम्' यह सूत्र आया है अर्थात् मितभोजन अल्पाहार स्वास्थ्य के लिये हितकर है। अतिभोजन तो सभी ने वर्जित किया है किन्तु मिताहार की प्रशंसा प्रायः सभी लेखक और व्याख्याता करते हैं। किन्तु मनुष्य की विशेषता तो तब है जब वह शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है उतना ग्रहण करे, न अधिक न न्यून। यथोचित भोजन करना बहुत बड़ा संयम है और यह भोजन का संयम ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य आदि सभी शुभकर्मों की आधारशिला है। भोजन में संयम करनेवाला मनुष्य कोई सहस्रों में एक दो होता है और ऐसा ही संयमी पुरुष श्रेष्ठ सच्चे स्वास्थ्य का स्वाद लूटता है और ब्रह्मचर्यपालन में सफलता ऐसे ही सौभाग्यशाली व्यक्ति को प्राप्त होती है। ७५ प्रतिशत स्वप्नदोष के रोगी भोजन में संयम न होने के कारण ही होते हैं। जहां भोजन कुछ अधिक स्वाद लगा संयम न होने के कारण पेट को ठोककर भरलिया। रात्रि में पेट के भारी होने से स्वप्नदोष होजाता है। फिर सारा स्वाद निकल जाता है, रोता और पछताता है। कितने ही व्यक्ति अपनी इस भूल को समझते हैं किन्तु संयम न होने के कारण इसी प्रकार हानि उठाते रहते हैं। कुछ रोगी अज्ञानवश भी भोजन में अधिक खाने की भूल करते हैं। जब उन्हें पता चलता है तो अधिक भोजन करना छोड़ देते हैं और आहार-व्यवहार के संयम को धारण करलेते हैं। नित्य युक्त आहार-विहार के बिना कल्याण संभव नहीं। अतः सभी तथा विद्यार्थियों के लिए युक्ताहारविहार का आदेश वा उपदेश ऋषियों ने किया है-"**नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव**" विद्यार्थी अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य युक्ति से आहार-विहार करते हुए विद्याग्रहण में यत्नशील होना चाहिए। मात्रा में न्यून आहार करने से बल, वर्ण, कान्ति, शक्ति, पुष्टि का नाश वा क्षीणता होती है, तृप्ति नहीं होती। उदावर्त आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, मनुष्य अतृप्त और अशान्त रहता है, वीर्य आदि धातुओं कती वृद्धि नहीं होती, आयु घट जाती है। शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन न करने से शरीर का सारभाग वीर्य, बल,

ओज नष्ट होजाता है। मन बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और नाश होजाता है और ८० प्रकार के वातरोगों की उत्पत्ति होती है। अतः न्यून भोजन करना, स्वस्थ होते हुए उपवास करना आदि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि जहां आवश्यकता से न्यून भोजन शरीर को रोगी तथा क्षीण बनाता है वहां आवश्यकता से अधिक भोजन बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य के लिए और भी अधिक घातक है। न्यून भोजन करना इतना अपराध नहीं जितना बड़ा और घोर अपराध अधिक भोजन करना है। कम भोजन करने से शरीर की क्षति कुछ अधिक दिनों में होती है किन्तु अधिक भोजन करनेवाले को अपने अपराध का शीघ्र दण्ड मिलता है। अतः यहाँ संक्षेप से अधिक भोजन करने की हानियां लिखी जाती हैं।

अधिक भोजन से हानियाँ

मात्रा में अधिक खाने से आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ाहट आदि उपद्रव खड़े होजाते हैं। महात्मा गांधी जी लिखते हैं कि "अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायुविकार पैदा होजाता है, खट्टी डकार आती हैं, यह भोजन न पचने की पहिचान है। डॉक्टर और वैद्य सभी का यह मत है।" पेट को ठूंस-ठूंस कर भरने से विशूचिका रोग (हैजा) बहुत ही शीघ्र होता है और इन्फ्लुएन्जा के होने की आशंका रहती है। अपचन, अजीर्ण, मलबन्ध, आनाह, संग्रहणी, बवासीर तथा स्वप्नदोष प्रमेहादि धातुसम्बन्धी रोग अधिक खानेवाले पेटू लोगों को ही होते हैं। मनुष्य प्रायः जितना खाते हैं उसका तीसरा भाग भी नहीं पचा सकते, जो भोजन नहीं पचता वह पेट में पड़ा रहकर रक्त को विषैला और दूषित बनाता और स्वप्नदोष अर्शादि असंख्य विकारों को जन्म देता है। प्राणशक्ति को द्विगुण कार्य करना पड़ता है, एक तो अधिक भोजन के पचाने में, दूसरा मल को बाहर निकालने में। अधिक खाने से राष्ट्र के अन्न और धन दोनों का अपव्यय होता है तथा रोग (दण्डरूप) भी प्रकृति देवी प्रदान करती है। धनी लोग इस दोष के अधिक दोषी हैं, वे कई निर्धन मनुष्यों का पालन जिससे होजाये इतना अधिक अन्न प्रतिदिन बिगाड़ देते हैं। यह घोर अपराध है। अतः मात्रा से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। इस विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं-

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।। (मनु० अ० २-५७)

अतिभोजन करने से स्वास्थ्यहानि तथा रोगों की वृद्धि होती है, आयु घटती है, व्याधि आदि के कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पुण्य का नाश और पाप

की वृद्धि होती है, और अधिक खानेवाले की जनता में निन्दा भी होती है। ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। पेट ठोक ठोक कर अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचहारी नहीं रहसकता। ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन मध्याह्न से आधा होना चाहिए तथा सोने से दो या तीन घण्टे पूर्व ही भोजन करना चाहिए। दुग्ध तथा जलपान भी सोने से दो वा तीन घण्टे पूर्व ही करलेना चाहिए। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिए।

कवि भगवान्दास वामन जी इस विषय में लिखते हैं-

अधिक वायु के भरन से फुटबाल फटि जाय।
बड़ी कृपा भगवान् की पेट नहीं फटि जाय।।१।।
यद्यपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज की देह।
रोग भयंकर होत है बने नरक की गेह।।२।।

इसी विषय में "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक स्वामी शिवानन्द जी लिखते हैं-

"अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं होसकता क्योंकि जोर की आंधी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे कामदेव पेटू मनुष्य को पटक पटक कर मार डालता है। अधिक भोजन करनेवाला पुरुप किसी हालत में वीर्य नहीं रोक सकता, उसका चित्त सदा विषय की ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी वन जाते हैं, आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनें मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यवान् या आरोग्यवान् बनना हो, स्वप्नदोष से और अकाल मृत्यु से वचना हो तो आपको अवश्य ही सादा मिताहारी बनना होगा।"

उत्तम भोजन से उत्तम सन्तान

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने ग्रन्थ संस्कारविधि में गर्भाधानसंस्कार विषय पर लिखते हैं-

"उत्तम संतान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है। इसलिए पति-पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिए बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौपधि का सेवन करें। वे पुष्टिकारक सर्वौपधि ये हैं। दो खण्ड आम्वाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी, चन्दन, मुरा, कुष्ठ, जटामासी, मोरवेल, शिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ, इन सव औपधियों का चूर्ण करके समभाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ उनकी दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़ी की मन्थनी ले मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय घृत करके उसमें सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिलाके अर्थात् सेर

भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वोषधि मिला सिद्ध कर घी हुये पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर और एक-एक माशा जायफल आदि मिला के नित्य प्रात:काल उस घी में २२, २३ पृष्ठ संस्कारविधि में लिखे प्रमाणे आघारावाज्याभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ ३४ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिः) इत्यादि सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर या भात के साथ मिलाके यथारुचि भोजन करें। इस प्रकार पुष्टिकारक भोजन करके गर्भ स्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और निरोगपुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः'** यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् आहार जो मद्य मांसादिरहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्त:करण की शुद्धि बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यह विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।''

गर्भाधान के समय स्त्री को सावधान रहने के लिए लिखते हैं-''पुन: स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे। कोई मादक मद्यादि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे, किन्तु घृत, दूध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि औषधि, चावल, मिष्ट दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे, उसमें ऋतु-ऋतु के मसाले-गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और सर्दी में केशर, कस्तूरी आदि डालकर खाया करे। युक्त आहार विहार सदा करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे, जिससे सन्तान अतिबुद्धिमान्, रोगरहित, शुभगुणकर्मस्वभाव वाला होवे।''

उत्तम संतान निर्माणार्थ पुंसवन संस्कार में महर्षि लिखते हैं-''स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे। विशेषकर गिलोय, ब्राह्मी औषधि और शुण्ठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे, और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरडे आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे, क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रखे इत्यादि शुभाचरण करे।''

भोजन का स्थान

भोजनालय-जिस स्थान पर बैठकर मनुष्य भोजन करे वह इतना शुद्ध, लीपा-पोता, धुला-धुलाया, हवादार और खुला होना चाहिये, जिससे आहार ग्रहण करते समय मन में कोई विकार न आये। उस समय भोजन करनेवाले व्यक्ति का चित्त भोजनालय की स्वच्छता आदि से प्रभावित होकर सर्वथा शान्त और प्रसन्न रहना चाहिए। आहार-ग्रहण करते समय यदि चित्त में किसी प्रकार की गड़बड़ी वा अशान्ति हुई तो भोजन का पाचनकार्य भलीभांति न होसकेगा। भोजन करते समय मानसिकविचारों का शरीरयन्त्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

जो लोग शुद्धि नहीं करते उनके भोजनालय में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं झूठी रकेबी तथा मांस खानेवालों के स्थान पर हाड़गोड़ आदि पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना। वह स्थान ऐसा बुरा प्रतीत होता है कि यदि कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत (वमन) होने की भी संभावना है। ऐसे दुर्गन्धयुक्त स्थान पर भोजन करने से शरीर और मन पर अच्छा प्रभाव कैसे पड़ सकता है? पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति के लिये महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं-

''जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिए।'' और कच्चे मकान में गाय के गोबर से चौका लगाने का महत्त्व यह लिखते हैं-

''गोमय (गाय का गोबर) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा विगड़ता और न मलिन होता है। जैसे मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहां भोजन करने से घी मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी और बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। यदि उसमें झाड़ू लगवाने से शुद्धि न की जावे तो जानो पखाने के समान वह स्थान होजाता है। इसलिए प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना चाहिये।'' इसी विषय में प्रश्न है-''चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा है या बाहर बैठकर?'' उत्तर देते हैं ''जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान देखें वहाँ भोजन करना चाहिये।'' इसी विषय में धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं-

भोक्तारं विजने रम्ये निःसंयाते शुभे शुचौ।
सुगन्धपुष्परचिते समे देशे च भोजयेत्।। ४५८।।

(सूत्रस्थान अ० ४६)

एकान्तस्थान में, जहां पर लोगों का यातायात=आना जाना न हो, रमणीय,

शुद्ध पवित्र तथा पुष्पादि से सुगन्धित, सम (जो ऊंचा-नीचा न हो, स्थान में बैठकर भोजन करना चाहिए। हमारे शास्त्रकारों ने भोजन, भोजन का स्थान और भोज्यपदार्थों की शुद्धता तथा पवित्रता पर अधिक बल दिया है, अतः भोजन के स्थानादि को धो-लीपकर सर्वथा शुद्ध रखना चाहिए। इसी में उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य निहित है।

भोजन से पूर्व तथा पश्चात् करने योग्य क्रिया

भोजन से पूर्व स्नान करने का महत्त्व हमारे प्राचीन पुरुषा विशेषतया मानते हैं। ग्रामीण लोगों पर इसकी अब तक छाप है। कितने ही भारतीय अशिक्षित ग्रामीण लोग बिना स्नान किये भोजन करना पाप समझते हैं। अतः मकरसंक्रान्ति आदि पर्वों पर तो न नहानेवाले लोग भी भोजन से पूर्व स्नान कर लेते हैं। यह प्रसिद्ध लोकोक्ति ''**सौ काम छोड़कर नहा**'' लोगों में कुछ व्यावहारिकरूप से प्रचलित है। संस्कृत में श्लोक का यह भाग-''**शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्**'' भी यही सिद्ध करता है कि भोजन से पूर्व स्नान अवश्य ही कर लेना चाहिए।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं-''प्रथम स्नान इसलिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं इससे स्नान भोजन से पूर्व अवश्य करना।'' आजकल पढ़े लिखे लोग भोजन तो चार पांच बार तक दिन में कर लेते हैं किन्तु स्नान जैसे आवश्यक कृत्य को दिन में एक बार भी नहीं करते। कितने ही ऐसे बाबू लोग इस भारतभूमि पर मिल जायेंगे जो सारे शीतकाल (जाड़े) में एक बार भी स्नान नहीं करते और बिस्कुट आदि तो बिना शौच से निवृत्त हुए ही बिस्तर पर उठते ही मंगवा लेते हैं किन्तु ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन सब ऋतुओं में बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिये। यदि स्नान प्रातः सायं दोनों समय किया जाये तो और भी अच्छा है।

यथार्थ में भोजन के अधिकारी तो वो ही लोग हैं जो प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ, शौच, स्नान, प्राणायाम, ईश्वरोपासना, यज्ञ, व्यायाम आदि नित्यप्रति प्रातःकाल ही करलेते हैं और इसी प्रकार सायंकाल भी सब नित्यकर्म करते हैं, भोजन की वेला में हाथ, पांव और मुख को भलीभांति शुद्ध जल से धोकर स्वच्छ करलेना चाहिए। शुद्ध वस्त्र धारणकर भोजनशाला में जाकर कुश आसन पर बैठें, यदि गृहस्थ हो तो बलिवैश्वदेवयज्ञ करे तथा अपने आश्रित कुत्ते आदि प्राणियों को भी भोजन दे।

हमारे शास्त्रों में अतिथिसत्कार का महत्त्व अत्यधिक पाया जाता है। अथर्ववेद

में आया है-"**श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्**" (१५।१०।२) यदि कोई अतिथि अपने घर आजाये तो अपना सौभाग्य समझकर उसका सत्कार करना चाहिए और "**अशितवत्यतिथौ अश्नीयात्**" (अ० ९-८-८) इस वेदाज्ञा के अनुसार गृहस्थ को अतिथि से पूर्व कभी भोजन न करना चाहिए। अत: अपने पूज्यजनों साधु महात्मा अतिथियों को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त करने के उपरान्त स्वयं प्रसन्नचित्त हो भोजन ग्रहण करना चाहिए।

भोजन करते समय बोलना या कोलाहल करना हमारी सभ्यता के विरुद्ध है। "**वाग्यतस्तु भुञ्जीत**" के अनुसार मौन होकर शान्तिपूर्वक भोजन करना चाहिए। अपने भाग्य और परिश्रम से जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिए और अन्न की कभी निन्दा न करें।

भोजनोपरान्त तत्काल ही कठोर शारीरिक या मानसिक कोई भी कार्य करना या दौड़ना आदि हानिकारक है। शांतिपूर्वक शारीरिक या मानसिक साधारण कार्य किया जासकता है। भोजन से पूर्व या पश्चात् कभी भी क्रोधादि के करने से भोजन विष वनजाता है। विलम्ब से पचता है अत: सावधान तथा शान्त रहना चाहिए।

भोजन करते समय सर्वप्रकार की चिन्ता शोक ईर्ष्यादि का परित्याग कर सर्वथा प्रसन्नचित्त रहने से भोजन भलीभांति पचता तथा शुद्ध रक्तादि धातुओं का निर्माण करता है और शरीर का ढंग बदलकर शरीर को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ और वलिष्ठ वनाता है। इसके साथ भक्ष्याभक्ष्य का विचार अवश्य रखना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा

प्राचीनकाल में राजा अश्वपति की प्रतिज्ञा (**न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः**) कि "मेरे राज्य में कोई शराब पीनेवाला नहीं है।" के अनुसार कोई भी मांस मदिरा आदि बुद्धिनाशकद्रव्यों का सेवनकरनेवाला नहीं था। सभी लोग अभक्ष्य को त्याग वल-बुद्धि-वीर्यवर्द्धक, भक्ष्यपदार्थों का सेवन करते थे। किन्तु आज लोग अभक्ष्यपदार्थों को अपनाकर निज बल बुद्धि को खोबैठे। यहां तक कि निरामिषभोजी हरयाणाप्रान्त में भी आजकल मांसादि अभक्ष्यपदार्थों का सेवन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जारहा है। अभक्ष्य और भक्ष्यपदार्थों के हानि-लाभों का विचारकर अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग करदेना चाहिए।

अभक्ष्य और भक्ष्य पदार्थों की परिभाषा ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में निम्न प्रकार है-

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को

प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजन आदि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाशक, बुद्धि, बल, पराक्रमवृद्धि होवे और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि (चावलादि), गोधूम (गेहूं), फल-कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाकमेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिए विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।''

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अपने भोजन में सुधार कर आहार-विहार करना चाहिए।

उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।।

किसी को अपना उच्छिष्ट-झूठा भोजन न दे और न किसी के भोजन के बीच स्वयं खावे अर्थात् एक थाली में एक से अधिक नर-नारियों को भोजन नहीं करना चाहिए। अधिक भोजन की अभक्ष्य है। और हाथ पैर धोये बिना कहीं इधर उधर न जावे। कुछ एक भाई सम्भव है यह प्रश्न करें कि **'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्'** इसका क्या अभिप्राय है ? इसका अभिप्राय यह है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् जो भोजन पृथक् शुद्ध-पवित्र रखा हुआ है उस भोजन को शिष्य करे और इससे दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् ही शिष्य को भोजन करना चाहिए।

क्या शहद का भी उपयोग नहीं करना चाहिए वह भी तो मक्खियों का उच्छिष्ट है और क्या दूध भी नहीं पीना चाहिए वह भी बछड़े का झूठा है। इसका उत्तर ऋषि दयानन्द जी महाराज के शब्दों में इस प्रकार है-''शहत कहनेमात्र उच्छिष्ट है, वह बहुतसी औषधियों का सार ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य है), बछड़ा बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं छू सकता, इसलिए उच्छिष्ट नहीं।''

परन्तु बछड़े के पीये पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दूध दोहना चाहिए। (सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

साथ और उच्छिष्ट खाने में यह एक भारी दोष है कि एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव नहीं मिलता। प्रकृति और स्वभावभेद होने से एक दूसरे के रोग एक दूसरे को लग जाते हैं। जिस प्रकार से (कुष्ठी) कोढ़ी व्यक्ति

के साथ भोजन करने से अच्छे मनुष्य का रक्त भी बिगड़ जाता है। इसलिए उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य है।

अभक्ष्य पदार्थ

वर्जयेन्मधु मांसञ्च (मनु० २।७७)

मधु और मांस का सेवन करना वर्जित है। संस्कृतसाहित्य में मधु शब्द प्राय: दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम शहद, द्वितीय शराब। यहां मधु शब्द का शराब अर्थ करना चाहिए, शहद नहीं। मधु और मांस का निषेध मनु महाराज ने इसलिए किया है कि यह दोनों मदकारी हैं और भी जितने गांझा, अफीम, चरस आदि नशा करनेवाली वस्तुएं हैं उन सबका सेवन वर्जित समझना चाहिए। क्योंकि **'बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।'** (शार्ङ्गधर अ० ४, श्लोक० २१)

जो द्रव्य बुद्धि का नाश करनेवाला है अर्थात् जितनी भी वस्तुएं नशा पैदा करती हैं वे सब बुद्धिलोपक होने से अभक्ष्य हैं।

शराब

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः।।

(मनु० ११।९४)

शराब तीन प्रकार की होती है। प्रथम जो गुड़ के द्वारा बनाई जाय वह गौड़ी, दूसरे जौ आटे से बनाई जाये वह पैष्टी, तीसरे जो मधुकवृक्षों के फूलों से बनाई जाये वह माधवी कहलाती है। जैसी एक वैसी ही सारी हैं अत: तीनों प्रकार की शराब वर्जित हैं।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्रह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।।

(मनु० ११।९३)

शराब अन्नों का मल है और मल, पाप कहलाता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (शूद्र भी) सुरापान न करे।

मांस

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मासं विवर्जयेत्।।

(मनु० ५।४८)

प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस की उपलब्धि नहीं होती। प्राणियों का

मारना सुखदायक नहीं। अतः माँस खाना सर्वथा निषिद्ध है। मांसभक्षी लोग '**अहिंसा परमो धर्मः**' का उल्लंघन कर महापापी बनते हैं।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते।। (मनु० ५।४५)

जो अहिंसक प्राणी अर्थात् गाय, मुर्गी, बकरी, बकरा, मछली आदि को अपने सुख के लिए मारता है वह इस लोक में तो क्या परलोक में भी सुख को प्राप्त नहीं होगा।

आजकल लोग मछली और अण्डे के खाने को मांसभक्षण में नहीं गिनते। किन्तु-

मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान् विवर्जयेत्। (मनु० ५।१५)

मछली को खानेवाले 'सर्वमांसादः' अर्थात् सभी का मांस खानेवाले कहलाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिसने मछली का मांस खालिया, उसने सबका मांस खालिया, अतः मछली का मांस खाना नित्तान्त निषिद्ध है।

माँस, मदिरा आदि के अतिरिक्त-

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्यानि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।। (मनु० ५।५)

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को लहसुन, शलगम, प्याज, कवक (साँप की क्षत्री) और मलिन, विष्ठा, मूत्र आदि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूल आदि नहीं खाने चाहिएं।

लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथा।
शेलुं गव्यञ्च पीयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।। (मनु० ५।६)

वृक्षों के लाल व श्वेत सभी प्रकार के गोन्द, शेलु-लिसौड़ा और गौ का खींस भी वर्जित है।

ब्रह्मचारियों के लिए अभक्ष्य पदार्थ

पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का उपदेश करता है कि-

मांसरूक्षाहारमद्यादिपानं च वर्जय।।१५।।

(संस्कारविधि-वेदारम्भप्रकरण)

हे ब्रह्मचारिन् तूं मांस, रूखा भोजन और शराब आदि का सेवन मत कर। और-

अत्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व।।१९।।

(संस्कारविधि वेदारम्भप्रकरण)

हैं, परन्तु यदि उनको मिलाकर अथवा एक के पश्चात् दूसरा पदार्थ खाने से लाभ के स्थान पर हानि करते हैं। ऐसे पदार्थ नीचे लिखे जाते हैं।

१. दही को गर्म रोटी अथवा किसी भी गर्म पदार्थ के साथ न खाना चाहिए। पानी मिला दूध और घी खाना हानिकारक है। छाछ, दही अथवा बेलगिरी में से किसी के साथ केला खाना हानिकारक है। बराबर-बराबर घी तथा मधु या जल और मधु मिलाकर खाना मानो विष को खाना है। कांसी, ताम्बा या पीतल के पात्र में कई दिन का रखा हुआ घी, तैल या कुछ समय का रखा हुआ दूध, मक्खन, खटाई, दही अथवा छाछ और दूध के साथ सिरका, अंजीर, कांजी, नमक, इमली, अखरोट, नीम्बू अथवा जामुन खाना हानिकारक है। किसी भी उष्ण पदार्थ के साथ शीतल शर्बत ककड़ी तरबूज अथवा खीरा नहीं खाना चाहिए। कांजी या सिरका के साथ तिल हानिकारक हैं। तैल और बेसन अर्थात् तैल के पकौड़े नहीं खाने चाहिएं। भूख को बन्द करते हैं, मेदा को खराब करते हैं। तैल की बनी हुई और घी की बनी हुई चीजें साथ-साथ खाना हानिकारक है। गन्ना और मसूर की दाल साथ-साथ नहीं खानी चाहिए। मूली या खरबूजे के साथ मधु, दूध में गुड़, खरबूजा एक साथ नहीं खाना चाहिए। घी, चिकनी मिठाई-खटाई, खीरा फूट, ककड़ी, तरबूज, खरबूज तथा नाशपाती के ऊपर पानी, शर्बत या दूध की लस्सी पीना बहुत हानिकारक है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भोजन

सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है और सभी प्राकृतिक पदार्थों को इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जासकता है। भोजन भी सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का है। मनुष्यों की प्रवृत्तियां अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव के कारण विभिन्न हैं। जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है वह उसी प्रकार के भोजन को पसन्द करता है। श्रीकृष्ण जी गीता में लिखते हैं- ''**आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः**'' अर्थात् सभी मनुष्य अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार के भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, सात्त्विकवृत्ति के लोग सात्त्विक भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, राजसवृत्ति के लोग राजसिक भोजन को उत्तम मानते हैं, इसी प्रकार तमःप्रधान व्यक्ति तामस भोजन में रुचि रखते हैं।

सात्त्विक भोजन

आयुःसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।। (गीता १७।८)

अतिखट्टा अमली आदि, अतितीखा लालमिर्च आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। अतः ब्रह्मचारियों को चाहिए कि उपर्युक्त सब पदार्थों को त्यागकर जीवन को उदात्त बनावें।

ब्रह्मचारी को लाल मिर्च, सफेद, काली, हरी कोई भी मिर्च खानी तो क्या खाने के लिए छूनी भी नहीं चाहिए।

'घृतौदनं तेजस्कामः' अर्थात् जो तेजस्वी बलवान् होना चाहे उसे घृत चावल आदि सात्त्विक पदार्थों का सेवन करना चाहिए। ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय में लिखा है-

मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए।

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

और-"जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार से भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें।"

(सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)

अचार, मुरब्बे, चटनी, मसाले, खट्टे, चटपटे मसालेयुक्त भोजन ब्रह्मचारी को भूलकर भी नहीं करने चाहिएं। वैसे ये गृहस्थों के लिए भी हानिकारक हैं।

सभी मनुष्यों को चाहिए कि बल, बुद्धि, पराक्रमवर्धक, त्रिदोषनाशक, ब्रह्मचर्य के लिए हितकारक सात्त्विक द्रव्यों को ही अपने भोजन में स्थान दें और जितने भी पदार्थ मांस मदिरादि बुद्धिनाशक एवं देश के लिए भी अहितकारक हैं उनको सर्वदा के लिए छोड़दें। क्योंकि-

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशुशोधनैः।।

(मनु० ११।१६०)

जो अपने आपको पवित्र रखना चाहता है उसे चाहिए कि वह अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कभी न करे। यदि कोई अज्ञानवश अभक्ष्य पदार्थ खाया भी जावे तो ज्ञान होने पर वमन आदि के द्वारा निकाल देवें वा कोई आत्मा की पवित्रता के लिए प्रायश्चित्त अवश्य करें।

विरुद्धभोजन

बहुत से भोजनपदार्थ ऐसे हैं कि जो पृथक्-पृथक् खाने से तो लाभ करते

जो अन्न गला सड़ा, बहुत विलम्ब से पकाया हुआ, दुर्गन्धित, उच्छिष्ट और कृमि कीटों से अपवित्र किया हुआ तथा रसहीन हो वह तामसिक है। इस प्रकार के भोजन के सेवन से सब प्रकार के रोग होजाते हैं, स्वास्थ्य और आयु क्षीण हो जाते हैं, बुद्धि, मन तथा आत्मा इतने मलिन होजाते हैं कि उनको अपने हिताहित और धर्म कर्म का भी ध्यान नहीं रहता। अत एव तमोगुणी व्यक्ति मलिन, आलसी प्रमादी और अकर्मण्य होकर पड़े रहते हैं। तामसिक भोजन किसी भी व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं, सर्वथा सर्वदा त्याज्य है।

तामसिक पदार्थ

गले सड़े दूषित बासी अन्न फल आदि, भैंस का दूध और घी, भिण्डी, काशीफल, लहसुन, प्याज, शलगम आदि कफवर्द्धक, बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाले दुर्गन्धयुक्त और भारी पदार्थ हैं वे सब तामसिक हैं।

भोजनसम्बन्धी आवश्यक नियम

१. जिस प्रकार अग्नि ईंधन के बिना बुझ जाती है इसी प्रकार भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, रक्तादि धातुओं का शोषण तथा शरीर कृश होजाता है।

२. भोजन निश्चित समय पर करना चाहिए, असमय में भोजन करने से नाना व्याधियां और मृत्यु होजाती है।

३. भोजन समय के व्यतीत होजाने पर खाली पेट में वायु जठराग्नि को मन्द करदेती है, तत्पश्चात् किया भोजन कठिनता से पचता है।

४. भोजन के गुण दोषों को ध्यान में रखते हुए दिन में केवल दो बार भोजन करना चाहिए।

५. अधिक उष्ण या बहुत देर से बना बासी भोजन नहीं खाना चाहिए।

६. सायंकाल का भोजन सोने से दो तीन घण्टे पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिए। दोपहर से सायंकाल के भोजन की मात्रा आधी होनी चाहिए।

७. कम भोजन से सन्तुष्टि नहीं होती, बल और शरीर क्षीण होजाते हैं। इसी प्रकार अधिक भोजन से भी आलस्य, प्रमाद, अफारा, भारीपन आदि होजाते हैं अत: दोनों ही त्याज्य हैं।

८. मित भोजन ही स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है।

९. अजीर्ण होजाने पर पथ्य हो या अपथ्य कुछ भी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि अजीर्ण में भोजन करना दु:खदायक है।

१०. अकेला स्वादु भोजन का सेवन न करे, अपने आश्रित सेवक सम्बन्धियों को उसमें सम्मिलित करना चाहिए।

आयु, वल, आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले तथा रसीले, चिकने, स्थिर (देर तक ठहरनेवाले) एवं हृदय के लिए हितकारी भोजन सत्त्वगुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल वीर्य आरोग्य आदि की वृद्धि हो, जो सरस चिकना (घृतादियुक्त), चिरस्थायी और हृदय के लिए हितकारी हो वह भोजन सात्त्विक है।

सात्त्विक-पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूं, जौ, चावल, मूंग, मोठ, उत्तम-फल, पत्तों का शाक, काली तोरई, घीया (कद्दू) आदि मधुर, शीतल, स्निग्ध, सरस, शुद्ध पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सात्त्विक हैं।

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।

(गीता १७।९)

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाह-जलन पैदा करने वाले तथा दुःख, शोक और रोगों को बढ़ानेवाले भोजन रजोगुणी व्यक्तियों को प्रिय होते हैं।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीखे, रूखे और दाहकारक नमक, मिर्च, इमली, मसाले आदि से युक्त भोजन राजसिक है और इसके सेवन से मनुष्य की वृत्ति चंचल होजाती है, नाना रोगों से ग्रस्त होकर व्यक्ति विविध दुःखों का उपभोग करता है और शोकसागर में डूब जाता है।

राजसिक पदार्थ

नमक, मिर्च, मसाला, हींग, गाजर, चना, उड़द, करेला, सरसों के तैल में पके हुए पदार्थ, मांस, मछली, कछुआ, अण्डा, शराव, चरस, चण्डू, काफी, कोकीन आदि मादकपदार्थ तथा उष्ण रूक्ष, गृष्ठ, भारी, देर में पचनेवाले सभी पदार्थ राजसिक हैं।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।। (गीता १७।१०)

वहुत देर से वने हुए, नीरस=शुष्क, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट=झूठे और वुद्धि को नष्ट करनेवाले भोजन तमःप्रधान व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

११. परस्पर विरुद्ध भोजन एक साथ खाने से लाभ के स्थान में हानि अधिक होती है।

१२. भोजन के कम से कम एक घण्टा पूर्व और एक घण्टा पश्चात् पानी पीना चाहिए।

१३. भोजन में जल नहीं पीना चाहिए, यदि भोजन रूक्ष हो तो थोड़ी मात्रा में पीना उचित है।

१४. व्यायाम के तत्काल पश्चात् भोजन करना अथवा भोजन के पश्चात् तत्काल व्यायाम बहुत हानिकारक है।

१५. भोजन में शुद्धता की अत्यधिक आवश्यकता है।

१६. भोजनोपरान्त मुख को कुल्लादि से शुद्ध कर लेना चाहिए और दांतों में फंसे अन्नकणों को तिनके आदि से युक्तिपूर्वक पृथक् कर देना चाहिए।

१७. ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन अत्यन्त हल्का होना चाहिए, यदि होसके तो केवल दुग्धाहार ही करे।

१८. भोजन खूब भूख लगने पर ही करना चाहिए, स्वाद भोजन में नहीं, भूख में है।

१९. जिन पदार्थों में से स्नेहभाग निकाल लिया गया है, उनका सेवन नहीं करना चाहिए।

२०. एक वस्त्र धारण कर भोजन नहीं करना चाहिए।

२१. शैय्या पर बैठकर, लेटकर, आसन पर रखकर या हाथ में लेकर भोजन करना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

२२. किसी के भी साथ एक पात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। कुल्ला किये बिना झूठे हाथ इधर उधर नहीं घूमना चाहिए।

२३. गीले पांव करके भोजन करना चाहिए, ऐसा करने से आयु बढ़ती है।

२४. सुश्रुत के मतानुसार भोजन के पश्चात् शतपद घूमकर बाईं करवट लेट जाना चाहिए। भावमिश्र के मतानुसार ८ श्वास सीधे, १६ दाहिनी करवट और ३२ श्वास बाईं करवट लेटकर लेने चाहिएं।

२५. सर्वदा एक ही प्रकार के पदार्थ नहीं खाने चाहिएं, अदल-बदल कर भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है।

२६. भूख में पानी पीने से जलोदर होजाता है और प्यास में भोजन करने से गुल्मरोग होजाता है, अतः प्यास में पानी तथा भूख में भोजन करना उचित है।

२७. भोजन से पूर्व जल पीने से जठराग्नि मन्द होती है, भोजन के पश्चात् जल पीने से कफ बढ़ जाता है और भोजन के बीच में अधिक जल पीने से भोजन भली-भांति नहीं पचता।

२८. पेट के दो भाग अन्न से, तीसरा भाग जल से और चौथा भाग वायु से भरना चाहिए अर्थात् पेट को ठूंस-ठूंस कर अन्न से नहीं भरना चाहिए।

२९. भोजन खूब चबा-चबा कर खाना चाहिए, इससे भोजन शीघ्रता से पचता है तथा शरीर का अंग बन जाता है, बिना चबाये जल्दी-जल्दी किया हुआ भोजन रोगों को बढ़ाता है। ध्यान रहे दांतों का कार्य आंतों से नहीं लेना चाहिए।

३०. फल तथा सभी शुष्क (जो द्रव न हों) पदार्थों को भोजन करनेवाले के दाहिनी ओर तथा दूध जल आदि द्रवपदार्थों को बाईं ओर रखना चाहिए।

३१. भोजन करते समय पहले मधुर रस का सेवन करना चाहिए, बीच में खट्टे और लवण-रस का तथा अन्त में शेष चरपरे कटु कषैले रसों का सेवन करना उचित है।

३२. यदि भोजन में फल हों तो पहले अनार खाना चाहिए, फिर रोटी, चावल शाकादि और अन्त में दूध या छाछ आदि द्रवपदार्थों का सेवन करना चाहिए क्योंकि शास्त्र में पहले घन (सख्त), बीच में मृदु (नर्म) और अन्त में द्रव पदार्थों के सेवन का विधान है।

भोजन में लवण और क्षार

लवण और क्षार

क्षार के विषय में चरकशास्त्र में लिखा है-"**दृष्टिशुक्रघ्नः क्षारः**" क्षार दृष्टि अर्थात् आंखों की देखने की शक्ति और वीर्य अर्थात् ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है। चरक में "**क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्**" अर्थात् पुरुष की पुंस्त्वशक्ति का नाश करनेवाले पदार्थों में सबसे अधिक पुंस्त्वनाशक क्षार है। मनुष्य की ब्रह्मचर्यशक्ति वा वीर्य का सबसे अधिक नाश क्षार करता है।

क्षार क्या वस्तु है, इस विषय में-'**क्षरणात्क्षारः**' क्षरण करने से क्षार कहाता है, यह त्वचा, मांस आदि को उतार देता है, अतः इसे क्षार कहते हैं। चक्रपाणि के मत में नीचे जाने की क्रिया को क्षार कहते हैं। दोषों को अपने स्थान से हिला देना, यह भी क्षरण का अभिप्राय है। वैसे क्षार अनेक रसवाले द्रव्यों यव, सज्जी, अपामार्ग, मूली, सुहागा आदि से तैयार किया जाता है। इसमें कटु लवण आदि अनेक रस होते हैं।

क्षार सभी लगभग रूक्ष, उष्ण और तीक्ष्ण होते हैं। अतः वीर्य को पतला करके नाश करनेवाले होते हैं। ब्रह्मचर्यप्रेमी व्यक्ति को इन का सेवन नहीं करना चाहिए। औषध में क्षार का सेवन करना भी पड़ जाए तो किसी चतुर वैद्य की सम्मति से करना चाहिए। जहां क्षार कुछ रोगों को दूर करता है वहां इसमें वीर्य नाश करनेवाला भयंकर दोष भी है, अतः ब्रह्मचारी को सदैव इससे बचकर रहना चाहिए। मानवगृह्यसूत्र में ''**उपनयनप्रभृति व्रतचारी (ब्रह्मचारी) स्यात्**'' इत्यादि नियम बतलाते हुए लिखा है कि ''**न मधुमांसे प्राश्नीयात् क्षारलवणे च।**'' (पुरुष १ ख० १-सू० १२) ब्रह्मचारी मद्य मांस और क्षार तथा लवण का सेवन न करे।

गोभिलगृह्यसूत्र में लिखा है-''**क्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व**''। स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है-''क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटादि द्रव्यों का सेवन मत कर।'' वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के लिए लिखा है कि तीन दिन तक क्षार लवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे।'' अतः ब्रह्मचारी के लिए लवण क्षार का परित्याग उसकी ब्रह्मचर्यसाधना में सहायक है।

लवण से हानियां

चरकशास्त्र में लवण के दोष इस प्रकार लिखे हैं-''**लवणो रसो गुरुः स्निग्धः उष्णश्च....पित्तं कोपयति, रक्तं तर्पयति, मोहयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि, 'विषं वर्धयति', शोफान् स्फोटयति, पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणद्धि, वलीपलितखालित्य-मापादयति, अपि च लोहितपित्ताम्लपित्तविसर्पवातरक्तविचर्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन् विकारानुपजनयति।**

लवण रस भारी स्निग्ध और उष्ण होता है, लवणरस वा नमक का उपयोग पित्त को कुपित करता है, रक्त में अत्यधिक गति को उत्पन्न करता, प्यास लगाता, मोह को पैदा करता, मूर्च्छा तथा सन्ताप को उत्पन्न करता है। फाड़ता है, माँसों को कुरेद देता है, कुष्ठ को गलाकर गिरा देता है, विष को बढ़ाता है, शोफों को फोड़ देता है, पुंस्त्व को नष्ट करता है, इन्द्रियों को क्षीण करता है, मनुष्य को बुड्ढा कर देता है, शरीर में झुर्रियां पड़ जाती हैं, बालों को सफेद और गंजा कर देता है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त आदि रोगों को उत्पन्न करता है। लवण को सुश्रुत में भी खुजली, शोफादि रोगों को उत्पन्न करनेवाला तथा पुंस्त्व तथा इन्द्रियों की शक्ति का नाशक लिखा है।

जिस प्रकार आजकल नमक का सेवन लोग करते हैं वह तो सर्वथा ही अनुचित है। सब्जियों में ऊपर से नमक डालकर, फलों के साथ भी नमक, यहां तक कि सेव तरबूज आदि मीठे फलों के साथ भी नमक खाते हैं, नमक मिले हुए दलिये आदि में दूध मिलाकर खाते हैं, ऐसे लोगों पर दया आती है। ऐसे लोग ब्रह्मचर्य की तो क्या रक्षा करेंगे? नमक के सेवन से लोग कुष्ठादि भयंकर रोगों में फंस जाते हैं। नमक के कारण अधिक खाजाते हैं, अधिक खाने से अपचन (कब्ज) होजाता है और कब्ज से वीर्यनाश होजाता है। क्योंकि कब्ज=मलबन्ध ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। भोजन का अपना स्वाद क्या है यह तो नमक खानेवाले जानते ही नहीं, क्योंकि नमक के स्वाद से अन्य स्वाद नष्ट होजाते हैं। अधिक नमक खानेवाले प्राय: जिह्वालोलुप=चटोरे होते हैं अत: वे पेटू बनजाते हैं। पेटू मनुष्य का ब्रह्मचर्यनाश सर्वनाश होजाता है। भोजन खाने का जो उद्देश्य स्वास्थ्य, बल वा शक्ति बढ़ाना तथा जीवनरक्षादि है, वह नमक खाने से सर्वथा समाप्त हो जाता है अत: बाह्य अप्राकृतिक नमक का परित्याग ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्यप्रेमी के लिए हितकर है।

जितनी आवश्यकता लवणरस की शरीरनिर्माण स्वास्थ्यरक्षणादि के लिए है, उतना नमक शाक-भाजी, फल आदि भोज्यपदार्थों में स्वाभाविकरूप से विद्यमान है। अत: शाक-भाजी फलादि सेवन अपनी प्रकृति के अनुसार यथोचित मात्रा में प्रतिदिन करना चाहिये, जिससे शरीर की आवश्यकतानुसार लवणरस की पूर्ति होसके, और बाहर का नमक खाकर ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य का नाश नहीं करना चाहिए। क्योंकि नमक में जो पाचनादि कुछ गुण लिखे हैं वहां इसे ब्रह्मचर्य का शत्रु भी तो लिखा है-**'पुंस्त्वमुपहन्ति'** ब्रह्मचर्य का नाश करके मनुष्य की पुंस्त्व शक्ति को नष्ट करता है अर्थात् लवण का सेवन मनुष्य को नपुंसक (नामर्द) बनाता है।

लवण-रस से लाभ तथा बाह्यलवण से हानियां

लवणरस का सेवन हम सभी प्रतिदिन भोजन में करते हैं। डॉक्टर लोग इसको शरीर के लिए हितकारी कहते हैं, अत: अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

निम्नलिखित लाभ बतलाते हैं :-

१. नमक से हड्डियों तथा शरीर का निर्माण होता है।
२. पाचनशक्ति में नमक सहायता करता तथा रक्त को शुद्ध करता है।
३. नमक के सेवन से मुख की लालाग्रन्थियां अधिक कार्य करती हैं, लार अधिक मात्रा में उत्पन्न करती हैं।

४. लवण की सहायता से यकृत् पित्त बनाने का कार्य करता है।
५. भोजन को पचाने के लिए जो हमारे आमाशय में पाचकरस बनता है वह लवण के सहयोग से ही बनता है।

चरकशास्त्र में वह लवणरस के गुण इस प्रकार लिखे हैं-'**लवणो रसः पाचनः क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनः तीक्ष्णः सरो विकास्यधःस्रंस्यवकाशकरो वातहरः स्तम्भसंघातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूत आस्यमास्त्रावयति कफं विष्यन्दयति.......**।' अर्थात् लवणरस पाचन, गीला करनेवाला, दीपन, स्राव करनेवाला, छेदन, भेदन, रेचक, सन्धिजोड़ों के बन्धनों को खोलनेवाला, कोष्ठों में रुके हुये मलों को बिना पकाये नीचे की ओर लेजानेवाला, वात और कफ को हरनेवाला, स्तम्भ (जकड़ना), बन्ध (कब्ज) दोषों के संघात का नाशक और सम्पूर्णरसों का शत्रु है अर्थात् यदि नमक या लवणरस किसी भोज्यपदार्थ में अधिक होजाये तो किसी अन्य रस का स्वाद नहीं आता है। मुख ने लाला और कफ को बहाता है। (मार्गान् विशोधयति) मार्गों को शुद्ध करता तथा शरीर के अवयवों को मृदु नरम करता है। (रोचयत्याहारम्) आहार में रुचि करता है। प्राय: लोग इसको स्वाद के कारण ही अधिक खाजाते हैं। ये लवणरस के लाभ बतलाये हैं जो नमक प्रतिदिन ऊपर से डालकर खाया जाता है उसमें ये गुण व लाभ नहीं हैं।

लवण इस शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी है अत: भगवान् ने लवणरस सबसे अधिक उत्पन्न किया है। प्राय: सभी खाद्यपदार्थों में लवणरस पाया जाता है। फल तथा शाक सब्जियों में स्वाभाविकरूप से लवणरस वा प्राकृतनमक अधिक पाया जाता है। अत: कन्द, मूल, फल, शाकभाजी के खाने को स्वास्थ्यरक्षार्थ अधिक महत्त्व दिया है। जो लोग शाकभाजी नहीं खाते वे प्राय: रोगी देखे जाते हैं। फलों में मिश्रित जो लवण पाया जाता है वह शरीर के लिए बहुत लाभकारी है। इस स्वाभाविक लवण की ही प्रशंसा प्राचीनशास्त्र तथा आधुनिक वैद्य और डॉक्टर करते हैं। जो भोजन में ऊपर से बनावटी सांभर, समुद्र आदि का नमक खाते हैं वह हानिकारक है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। वास्तव में हमारी आवश्यकता के अनुसार लवणरस हमें भोज्यपदार्थों से स्वयमेव प्राप्त होजाता है। अत: यह आवश्यकता नहीं कि भोजन पकाते समय लवण डाला जाये या खाते समय ऊपर से डालकर खायाजाये। लवणरस की प्रशंसा के कारण लोगों में नमक मिलाने की प्रबल प्रथा चली हुई है, यह अनावश्यक और हानिकारक है। स्वाद के कारण लोग नमकसेवन आवश्यकता से अधिक मात्रा में करके हानि उठा रहे

हैं। अतः ऊपर से नमक डालकर अथवा भोजन में पकते समय डालकर खाने की प्रथा को बन्द करना ही हितकर है।

भोज्यपदार्थों में विद्यमान स्वाभाविक लवणरस ही हमारे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त है। तथा यह बात भी भलीभांति समझ लेनी चाहिए कि जहां कहीं लवण का लाभ अथवा उपयोग लिखा है यह सांभर, विड, सौंचर और समुद्र नमक तो कदापि नहीं लेना चाहिए, वहां सैंधा नमक का प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है। यह वैद्यों के लिए संकेत है-"**लवणं सैन्धवं प्रोक्तम्**" जहां कहीं प्रयोग में लवण लिखा हो तो सैंधा नमक ही लेना चाहिए। चरकशास्त्र में भी "**सैन्धवं लवणानां श्रेष्ठतमं पथ्यम्**" लवणों में सबसे श्रेष्ठ सैंधा नमक पथ्य माना है। सैंधा नमक खनिज है, अर्थात् खान से निकलता है। इसकी खान पाकिस्तान में रह गई, अब सैंधा नमक के नाम से बाजार में बिकता है। दुर्भाग्य से असली सैंधा नमक तो औषधनिर्माण के लिए भी नहीं मिलता, प्रतिदिन खाने के लिए कहां से आये? सांभर नमक का सेवन तो अत्यन्त हानिकारक है। ब्रह्मचर्यरक्षा की दृष्टि से तो सभी नमक बहुत हानिकारक हैं।

लवण पर ब्र० रामप्रसाद जी का अनुभव

नमक के विषय में ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' जो फांसी के तख्ते पर देश की स्वतन्त्रता के लिए हंसते-हंसते झूलगये, लिखते हैं-

"सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था इसी कारण कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाता था। तब किसी सज्जन के कहने से हमने नमक खाना छोड़ दिया, केवल उबालकर शाक या दाल से एक समय भोजन करता। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया, केवल थोड़ासा दूध ही रात्रि को पीने लगा। मिर्च खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर होगये और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय होगया, सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

लवण पर महात्मा गांधी का अनुभव

महात्मा गांधी जी लवण के विषय में लिखते हैं-

"मसाले के विषय में जो कहा गया है वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे, किन्तु यह एक अनुभव सिद्ध बात है इंग्लैण्ड में एक स्कूल है, जिसका यह मत है कि नमक मसाले से अधिक हानिकारक है, जो शाक हम लोग खाते हैं उसमें आवश्यकता अनुसार नमक का भाग विद्यमान है। अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता

नहीं है। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे प्रकार से बाहर निकल आता है। प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का भाग छोड़ रखा है। एक लेखक का कहना है कि लवण खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग सर्वथा लवण नहीं खाते उनका खून इतना स्वच्छ होता है कि सांप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहां तक सत्य है। किन्तु अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूं कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र ठीक होजाते हैं। दूसरी बात यह है कि इसके छोड़ने से किसी की कुछ हानि होती नहीं देखी गई है, किन्तु उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से नमक छोड़ दिया है उसका परिणाम मुझे जरा भी नहीं अखरता। बल्कि कुछ अंशों में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहले के समान बार-बार जल नहीं पीना पड़ता। यदि कोई मनुष्य नमक छोड़दे तो कुछ दिन तक उसे अड़चन प्रतीत होगी। किन्तु यदि वह अपने धैर्य को स्थिर रखेगा तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ होसकता है।

लवण पर महात्मा नारायण स्वामी जी का मत

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज अपनी 'योगरहस्य' पुस्तक में लिखते हैं-"नमक यदि न खाया जाये तो अधिक अच्छा है, अन्यथा थोड़ी मात्रा में खाया जासकता है।" अत: यदि अभ्यासी नमक का सर्वथा परित्याग करदें तो उनके लिए अधिक हितकर है।

लवण पर टण्डन जी का अनुभव

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने हरद्वार में अपने एक भाषण में कहा था "मानवभोजन में ऊपर से नमक मिलाकर खाना व्यर्थ ही नहीं किन्तु अनर्थकर भी है, उतना नमक मनुष्य को शाकादि में मिल जाता है जितने की उसे आवश्यकता है। ऊपरी नमक हानिकारक है।" टण्डन जी ने तर्कबल से विषय पुष्ट किया और उदाहरण में अपने आपको उपस्थित (पेश) किया। वे दीर्घकाल से नमक नहीं खाते, किन्तु इस प्रयोग से उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। टण्डन जी ऊपरी नमक को एक हल्का विष मानते हैं। उन्होंने वैद्यों तथा डॉक्टरों से अनुरोध किया कि वे इस विषय पर विचार करें।

लवण पर मेरा अनुभव

४० वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत होगया, तभी से मैंने नमक खाना छोड़ रखा है। उसके कुछ काल पश्चात् मेरे अन्य कई मित्रों से भी नमक का परित्याग

कर रखा था। उनमें से कुछ तो कुछ वर्ष पीछे खाने लग गये और कोई कोई ऐसा भी है, जिसने छोड़ने के पीछे नमक को खाने के लिए स्पर्श भी नहीं किया। हमारे गुरुकुल (झज्जर) में २२ वर्ष से कोई भी ब्रह्मचारी नमक ऊपर से डालकर या शाकभाजी पकते समय भी डालकर नहीं खाता। जो शाक-भाजी में स्वाभाविक लवण होता है वही हम खाते हैं, सैंधादि कोई भी नमक भोज्यपदार्थ के रूप में सेवन नहीं करते। इसका मुख्य कारण यही है कि मेरा यह निश्चय है कि ब्रह्मचारी को अपने साधनाकाल में नमक नहीं खाना चाहिए, अत: मैं स्वयं भी नहीं खाता तथा हमारे ब्रह्मचारी भी नहीं खाते।

नमक छोड़ने का प्रभाव स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है यह हमारे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को देखने से ही पता चलता है। विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भारत के सभी शिक्षणालयों से सामान्यतया अच्छा ही होसकता है खराब तो किसी रूप में है ही नहीं। खुजली तो आज तक किसी को हुई ही नहीं। फार्मी गन्ना चूसने के कारण कभी-कभी एक दो विद्यार्थियों को दाद अवश्य हुए हैं, वे साधारण औषध के सेवन से चले गए। आंख किसी की कभी नहीं दु:खती। फोड़े फुन्सी आदि रक्त-सम्बन्धी विकार भी नहीं होते। प्यास सामान्य लोगों की भांति हमें नहीं सताती। हमारे यहां जब नया बालक प्रविष्ट होता है तब कुछ दिन तो उसे हमारा बिना नमक का शाक-दाल अच्छा नहीं लगता। किन्तु थोड़े दिन में उसका अभ्यास हो जाता है और भोजन को रुचि करके खाने लगता है तब उसका शरीर तथा स्वास्थ्य उन्नति करने लगते हैं। रक्त अत्यन्त शुद्ध होजाता है, मुख की लाली शरीर का लाल रंग तथा चर्मरोगों का सर्वथा अभाव, इसके अकाट्य प्रमाण हैं। यही नहीं चरक शास्त्र तथा महात्मा गांधी जी का यह कथन है कि नमक खाने से सर्प आदि विषैले जन्तुओं का विष शीघ्र और अधिक हानि करता है। जो नमक नहीं खाते उन पर सर्प आदि का विष बहुत न्यून हानि करता है अथवा करता ही नहीं, यह मेरा अनेक वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे तथा मेरे अनेक ब्रह्मचारियों को सर्प ने काटा है किन्तु बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रत्यक्षरूप से तो अनेक ब्रह्मचारियों पर नाममात्र भी सर्प के काटने का प्रभाव नहीं दिखाई दिया। किसी-किसी पर नाममात्र का प्रभाव हुआ, वह औषध-उपचार से एक-दो दिन में ठीक होगया। किन्तु जो व्यक्ति नमक का सेवन करते हैं ऐसे भी मेरे कई साथियों को सर्प ने काटा। उनको सर्प के काटने से पर्याप्त हानि तथा कष्ट उठाना पड़ा।

लगभग २० वर्षों से मैं सर्प-विष की चिकित्सा कर रहा हूं। आसपास के ग्रामों से प्रतिवर्ष सर्प के दंशित रोगी आते ही रहते हैं। इस शुष्क प्रान्त में बिना

फण के पित्तप्रकृति के (Vapur) सर्प अधिकतर घुरेड़िये चित्तकोड़ियादि हैं जो पर्याप्त विषैले होते हैं। चिकित्सा समय पर तथा यथोचित नहीं होती तो मृत्यु भी हो जाती है। इसी प्रकार के सर्पों ने हमारे ब्रह्मचारियों को काटा था। उन पर तो नाममात्र का प्रभाव हुआ, अथवा सर्वथा प्रभाव भी नहीं हुआ।

जब कोई सर्प का काटा रोगी चिकित्सार्थ गुरुकुल में आता है तब औषधोपचार के साथ उसका नमक मसाला आदि सब छुड़वा देते हैं तथा गोघृतादि सात्त्विक पदार्थों का सेवन विशेषतया करवाते हैं। नमकादि के छुड़वाने से चिकित्सा शीघ्र तथा सरलता से होजाती है। इसी प्रकार तृषा, दाह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, कुष्ठ, शोथ, गंज, दाद, खुजली, आदि सब चर्मरोग, नेत्ररोग, दन्तरोग, बालों का सफेद होना, नपुंसकता अर्थात् ब्रह्मचर्य का नाश, स्वप्नदोष और धातु-प्रमेह आदि रोगों को नमक का सेवन जन्म देता और बढ़ाता है। नमक के छोड़ने से उपर्युक्त रोग कम होजाते हैं, कई तो सर्वथा चले ही जाते हैं। यह अनुभव से अनेक वर्षों से कररहा हूँ। ब्रह्मचर्य के लिए नमक कितना हानिकारक है यह काकोरी के शहीद ब्र० रामप्रसाद जी के लेख को पढ़कर पाठक समझ ही गये हैं।

नपुंसकता को जन्म देनेवालों में नमक सबसे बढ़कर है यह चरकशास्त्र के अनेक प्रमाणों से सिद्ध होचुका है। क्योंकि रूक्ष और तीक्ष्ण प्रकृति के नमकादि जितने भी पदार्थ हैं ये वीर्यादि धातुओं को पतला करते हैं। इससे स्वप्नदोष, वीर्य का मूत्र में निकलना आदि प्रमेहरोग होजाते हैं। अत: स्वास्थ्यप्रेमी तथा ब्रह्मचारियों को नमक का सेवन कदापि भूलकर भी नहीं करना चाहिए। यदि दुर्भाग्यवश किसी को औषधादि के रूप में वा किसी अन्य कारण से नमक का प्रयोग करना भी पड़े तो सैंधा नमक का ही सेवन, वह भी थोड़ी मात्रा में करना चाहिए। चरकशास्त्र के अनुसार, **''सैंधवं लवणानाम्''** सब नमकों में सैन्धव नमक ही पथ्य है, अर्थात् कम हानिकारक है। किन्तु ब्रह्मचारी को नमक से सर्वथा बचना चाहिए। सैन्धे नमक की जहां खाने की आज्ञा है वह केवल इसलिए कि जो कोई रोगी आदि लवण खाना चाहे अथवा कोई गृहस्थ नमक बिना न रहसके तो वह वहुत थोड़ी मात्रा में सैन्धा नमक का सेवन करसकता है। इससे कुछ कम हानि कोगी क्योंकि **''लवण सैन्धवं नोष्णम्''** चरक में लिखा है। सभी लवण उष्णवीर्य होते हैं केवल सैन्धव लवण उष्णवीर्य नहीं। तीक्ष्णता और रूक्षता का दोष इसमें भी है। अत: नमक सेवन से बचना ही ब्रह्मचारी के लिए कल्याणकारी है।

दूध

गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि अनेक पशुओं का दूध प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु गोदुग्ध ही सर्वश्रेष्ठ और अमृत है। महाभारत में आया है-''**अमृतं वै गवां क्षीरम्**'' (अनु० अ० ६६। ४६) अर्थात् गोदुग्ध ही वास्तव में अमृत है।

हमारे शरीर के लिए दूध की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि बच्चे को दूध यथोचित मात्रा में नहीं मिलता तो उसके शरीर का पूर्ण विकास नहीं होपाता। वैसे तो दूध सभी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और पथ्य है किन्तु वृद्धि-अवस्था में १६ वर्ष से ४० वर्ष तक नवयुवकों के लिए अत्यावश्यक है। ''**क्षीरमोजस्करं पुंसाम्**'' तथा ''**पयसा वर्धते तनुः**'' के अनुसार दूध से बल, वीर्य, ओज, कान्ति और शरीर की वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन के भोजन में दूध का अपना विशेष स्थान है।

दूध सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण भोजन है। डॉक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन ए.बी.डी.जी. होते हैं। दूध में सभी पोषक एवं जीवनीय तत्त्व विद्यमान हैं अतः केवल दुग्धाहार से ही शरीर का पूर्ण विकास होसकता है। संसार में इसके तुल्य अन्य कोई पदार्थ नहीं जिस पर जीवननिर्वाह या शरीर का विकास किया जा सके। गोमाता की यह अद्वितीय देन है। धन्वन्तरीय निघण्टु में गोदुग्ध के गुण इस प्रकार लिखे हैं :-

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं पुंस्त्वकृद्वात्तरक्तविकारनुत्।। १६४।।

(सुवर्णादि षष्ठो वर्गः)

गोदुग्ध पथ्य=सब रोगों वा अवस्थाओं में सेवन करनेयोग्य, रसायन, बलकारक, हृदय के लिए हितकारी, मेधा (बुद्धि) को बनानेवाला, आयु को बढ़ानेवाला, पुंस्त्वशक्ति अर्थात् वीर्यवर्द्धक, वातनाशक और रक्तपित्त के विकारों को दूर करनेवाला है।

दूध को हमारे शास्त्रकारों ने ''**सद्यः शुक्रकरं पयः**'' तत्काल वीर्यवर्द्धक लिखा है, इसी प्रकार चरक सुश्रुत आदि सभी आयुर्वेदीय ग्रन्थों में गोदुग्ध की महिमा और गुण बतलाये हैं। आजकल गोवंश की रक्षा नहीं की जाती, उसके स्थान पर भैंसों को पाला जाता है और उन्हीं का घी दूध आदि सेवन किया जाता है, किन्तु भैंस का दूध हानिकारक है।

गाय और भैंस के दूध की तुलना

१. गाय का दूध मधुर, स्निग्ध, शीतल, वात-पित्त-कफ नाशक, फेफड़े के लिए लाभकारी, क्षयरोग को दूर करनेवाला तथा नस और नाड़ियों को स्निग्ध

करनेवाला है। अस्थिमार्दव (Reckets) से क्षीण होनेवाले बालक के लिए गाय का दूध अमृत के समान प्राणवर्द्धक है। जिन बालकों के नेत्रों की ज्योति क्षीण हो गई है या जो रक्तक्षय या पाण्डुरोग से पीड़ित हैं उनके लिए भी यह अत्यन्त लाभकारी औषध है। बराबर सेवन करने से सभी व्याधियां दूर होती हैं एवं बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता। धारोष्ण पीने से अमृततुल्य है, यह दो घण्टे में पचता है।

२. भैंस का दूध उपर्युक्त कई रोगों के लिए तो बिल्कुल निकम्मा है तथा कई रोगों पर कुछ लाभकारी है भी, तो बहुत कम मात्रा में। यह मधुर, भारी, गर्म, वीर्यवर्धक, चिकना, कफ और वायुकारक, आलस्य पैदा करनेवाला, मन्दाग्नि तथा छूत की व्याधियों को बुलानेवाला है। धारोष्ण जहर है, नौ घण्टे में पचता है। पीने से नींद सताती है। अनिद्रारोग में औषधरूप से दिया जाता है। उसमें बड़ी गर्मी रहती है, इसलिए भैंस के दूध आदि पदार्थों के गुण शीघ्र ही बाहर होजाते हैं और देर तक शरीर में शक्ति को नहीं रख सकते।

३. गौ के दूध में विटामिन ए.डी. बहुत अधिक होते हैं। गौ तेज धूप में गोचरभूमि में चरकर अपने दूध को सूर्य किरणों द्वारा उपयोगी बनाती है और भैंस धूप में नहीं चर सकती।

४. गोदुग्ध में आयोडीन और केरोटीन होते हैं जो भैंस के दूध में नहीं होते। केरोटीन ही विटामिनों के गुणों को सुरक्षित रखता है।

गाय के दूध के स्नेहपदार्थ में जहां यह २० यूनिट है वहां भैंस के दूध के स्नेहपदार्थ में २ यूनिट से भी कम है। गाय के दूध को उबालने पर उसकी मलाई में जो पीला रंग आता है वह इस कैरोटीन पदार्थ के कारण ही आता है। भैंस के दूध में यह पदार्थ नहीं है इसलिए उसका नवनीत (मक्खन) घी एकदम सफेद होता है।

५. गोदुग्ध का प्रोटीन अधिक आसानी से पच जाता है, वीर्यवर्धक है और आंत के रोगों को भगानेवाला है। एक से दो घण्टों में पच जाता है। पुरुषार्थ, शान्ति, चुस्ती लानेवाला सात्त्विक आहार है।

६. गौ का दूध दैवी और भैंस का दूध आसुरी है। काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, आलस्य, मन्दाग्निकारक, गर्म, भारी, मन्दबुद्धि, तामसी आहार है।

अंग्रेजी में कहावत है- Cow milk and honey are the root of beauty (गोदुग्ध और मधु सौन्दर्य के मूल कारण हैं) डॉक्टरों का यह अनुभव है कि धारण-शक्ति को तीव्र बनाने तथा उसको टिकाये रखने में यह बहुत सहायक है। किन्तु यह गुण भैंस के दूध में नहीं है।

गोदुग्ध

बलदायक, आयुवर्धक, शीतल, कफ और पित्त के विकारों को शान्त करता है, हृदय के लिए हितकारी, रुचिकारक, बुद्धि तथा अत्यधिक वीर्यवर्धक, स्वादु, रसायन और जीवनीय है, आंखों के लिए हितकारी तथा रस और पाक में मधुर है।

महिषी (भैंस) दुग्ध

भैंस का दूध गाय के दूध से भारी, शीतल और स्निग्ध होता है। महाभिष्यन्दी, निद्रा आलस्य और प्रमादजनक, जठराग्नि को मन्द करनेवाला और बलदायक है किन्तु भैंस का दूध कामोद्दीपक है अतः ब्रह्मचारी के लिए विशेष हानिकारक है।

अजापयः (बकरी का दूध)

बकरी के दूध के गुण भी लगभग गाय के दूध से मिलते हैं। यह विशेषतया कृश शरीरवाले दुबले पतले व्यक्तियों के लिए हितकर हैं। श्वास, कास, रक्तपित्त और त्रिदोषनाशक है।

अविकपयः (भेड़ का दूध)

भेड़ का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु, पित्त और कफकारक है। केवल वात व्याधियों में पथ्य है। स्थूलता और प्रमेहनाशक है।

उष्ट्रीपयः (ऊंटनी का दूध)

रूक्ष, उष्ण, कुछ लवण, लघु और स्वादु है, वात और कफ के रोग, गुल्मोदर, शोफ, अफारा, कृमि, कुष्ट, बवासीर और विषनाशक है।

हस्तिनीपयः (हथिनी का दूध)

भारी, बलदायक, स्निग्ध, अतिशीतल, मधुर, नेत्रज्योतिवर्धक तथा शरीर को अत्यन्त दृढ़ करनेवाला है।

अश्वापयः (घोड़ी का दूध)

खट्टा, नमकीन, दीपन, लघु, बल-कान्तिदायक और श्वास तथा वातनाशक है।

गर्दभीपयः (गधी का दूध)

मधुर, अम्ल, रूक्ष और दीपन है। श्वास-कास-नाशक तथा बच्चों के सभी रोगों को दूर करता है।

मानुषीपयः (स्त्री का दूध)

मधुर, शीतल, लघु, स्निग्ध, तृप्तिकारक, दीपन, बलवर्द्धक, जीवन, नेत्रों के लिए हितकारी, रक्तपित्त तथा नेत्र-पीड़ा को नष्ट करता है। नस्य लेने और आंखों में डालने के लिए पथ्य है।

घृत

दूध की भांति घी का भी भोजन में अपना विशिष्ट स्थान है। घी के अभाव में भोजन में स्वादिष्टता और स्निग्धता नहीं आती। घी के संयोग से सभी भोज्य-पदार्थ उत्तम, स्वादिष्ट और बलदायक होजाते हैं। "**आयुर्वै घृतम्**" के अनुसार घी से आयु बढ़ती है और वेद में आया है "**घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व**" (यजु० १२-४४) अर्थात् घी से शरीर की वृद्धि होती है।

महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने गोघृत के गुण इस प्रकार लिखे हैं-

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम्।
बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्थिरार्थिनाम्।।१४५।।
क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम्।
विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यं बल्यमग्र्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्।। १४६।।

(धन्वन्तरीय निघण्टौ षष्ठो वर्गः)

अर्थात्-गाय का घी बुद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणावती बुद्धि), अग्नि (जाठराग्नि), बल, आयु, वीर्य, नेत्रज्योति, बालक-बूढ़े, प्रजा (सन्तान), कान्ति (तेज) तथा सौकुमार्य (युवावस्था) की स्थिरता के लिए हितकारी व लाभदायक है। गाय का घी पाक में मधुर और शीतल है। वातरोगों, पित्तरोगों तथा सब प्रकार के विषों (जहरों) को नष्ट करनेवाला है। क्षतक्षीण (निर्बल), परिसर्प रोग तथा शस्त्र और अग्नि से पीड़ितों के लिए लाभदायक है। चक्षु के लिए हितकारी अर्थात् नेत्रज्योतिवर्धक और सबसे अधिक गुणवाला है। सुश्रुतशास्त्र में भी गोघृत के गुण इसी प्रकार लिखे हैं।

श्री नरहरि जी राजनिघण्टु में लिखते हैं-गाय का घी, वातश्लेष्महारक, श्रमनिवारक, हृदय को हितकारी व शरीर को स्थिरता देनेवाला है। और यह भी लिखा है कि-

गव्यं हव्यतमं घृतं बहुगुणं भोग्यं भवेद्भाग्यतः।। २०४।।

(राजनिघण्टौ पंचदशो वर्गः)

गौ का घी हव्यतम अर्थात् हवन के लिए सर्वश्रेष्ठ और बहुगुणयुक्त है, यह बड़े सौभाग्यशाली मनुष्यों को ही खाने को मिलता है। यथार्थ में गोपालक ही शुद्ध गोघृत का सेवन करते हैं। शालिग्राम निघण्टु में गाय के घृत के गुण यों लिखे हैं-

गाय का घी अमृत के समान गुणकारी और रसायन है तथा सब घृतों में उत्तम है। यही प्रशंसनीय है। भावप्रकाश निघण्टु में भी गोघृत को इससे भिन्न,

कुरूपतापाय तथा राक्षस-नाशक, मंगलरूप, रसायन, सुन्दर, सम्पूर्ण घृतों में उत्तम बताया है।

इसी प्रकार दही, तक्र (छाछ) आदि भी स्वास्थ्यरक्षा के लिए उत्तम हैं। दही और तक्र के सेवन से पाचनप्रणाली अपना कार्य सुचारू रूप से करती है, पेट के सभी विकार नष्ट होकर उदर निरोग रहता है। निघण्टुकार ने लिखा है कि-'**न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्**' अर्थात् तक्र का सेवन करनेवाला कभी रोगी नहीं होता।

फलाहार

दुग्धाहार के पश्चात् दूसरा नम्बर फल का ही है। कुछ लोग फलाहार को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं किन्तु इसमें मलभाग अधिक होने से सर्वश्रेष्ठ दुग्धाहार ही है। फलाहार दुग्धाहार से हीन तथा अन्न से उत्तम है। फलों में बल वीर्य, कान्ति और ओज को बढ़ाने की शक्ति कूट कूटकर भरी हुई है। फलाहार से सत्त्वशक्ति की वृद्धि होती है, मन की चंचलता नष्ट होती है और स्वास्थ्य भी अत्युत्तम होजाता है। फल ताजा और पके हुए एवं जो दूषित न हों वे ही उपादेय हैं। जो फल गुणों की दृष्टि से उत्तम हैं उनको प्रकृति के अनुसार सोच-विचार कर ग्रहण करना चाहिए।

अञ्जीर-अञ्जीर का फल अत्यन्त शीतल है, रक्तपित्त को तत्काल दूर करता है। पित्त और शिर के विकारों में प्रथम पथ्य है तथा नाक से रक्त गिरने (नकसीर) में विशेष लाभदायक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमियों के लिए अत्यन्त हितकर है, प्रचुरमात्रा में सेवन करना चाहिए।

शहतूत-पक्के शहतूत गुरु, स्वादु, शीतल, वात-पित्तनाशक हैं और कच्चे भारी, सारक, खट्टे उष्ण और रक्त-पित्तकारक होते हैं। थोड़ी मात्रा में इसका सेवन करना चाहिए। खांसी, जुकाम, गले के रोगों के लिए हितकर हैं।

आंवला-आंवला किंचित् कटु, खट्टा, मधुर, शीतल, हल्का, दाह, पित्त, वमन, प्रमेह, शोष, अरुचि रक्तपित्त, आध्मान, मलबद्धता को नष्ट करता है। केशों के लिए हितकारी, रसायन, जरा और त्रिदोषनाशक है-खट्टेपन से वात का, मधुरता और शीतलता से पित्त का तथा कषैलापन और रूक्षता से कफ का नाश करता है।

सूखा आंवला कटु, अम्ल, तिक्त, मीठा, कषैला, केश और नेत्रों के लिए हितकारी और वीर्यवर्द्धक है। तृषा, मेद, विष और त्रिदोषनाशक है। केवल आंवला की खटाई ही ऐसी है जो हानि नहीं करती।

अंगूर-अंगूर सर्वश्रेष्ठ फल है, यह रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध है। स्वर और आंखों के लिए हितकारी, वात, रक्त-पित्त, ज्वर, श्वास, वमन,

कामला, दाह, तृषा आदि का नाश करता है। इसी प्रकार दाख और किशमिश भी लाभदायक हैं। अंगूर यदि खट्टा हो तो रक्तपित्त को करता है। इसे यथेच्छा सेवन करना चाहिए।

आम-पका हुआ आम सुगन्धित, मधुर, स्निग्ध, अत्यन्त, पुष्टिकारक, रुचिकारक, वातनाशक, हृदय के लिए हितकारी, शीतल, भारी, मलरोधक, प्रमेहनाशक, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला, तृषा, वात तथा श्रमनाशक, बल, वीर्य, मांस और कफ को बढ़ाता है। आम के साथ दूध का सेवन अत्यन्त लाभप्रद है। दूध के साथ आम चूसने से बलवीर्य की अत्यन्त वृद्धि करता है, लघु, वात-पित्त-नाशक और शीघ्र पचता है। आम खट्टा होता है तथा बिना दूध के हानि करता है।

कच्ची आम्बियाँ कषैली खट्टी वात और रक्तपित्तकारक होती हैं। इसी प्रकार कच्चा बड़ा आम भी अत्यन्त खट्टा, रूक्ष, त्रिदोषकारक तथा रुधिर के रोगों को बढ़ाता है। अतः इनका सेवन नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचारी के लिए कच्चे आम की खटाई अत्यन्त हानिकारक है।

अमरूद-अमरूद स्वादु, कषैला अत्यन्त शीतल, वातपित्तनाशक, कफकारक, वीर्यवर्धक और रुचिकारक है। इसका यथोचित सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। किसी को यह कब्ज करता है तथा दस्त भी लगा देता है।

केला-केला स्वादिष्ट, शीतल, पाक में मधुर, वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक, रुचिप्रद, मांस को बढ़ानेवाला, क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग और प्रमेहनाशक है। केले की जड़ कृमिनाशक है। सुखाकर कच्चे फलों का चूर्ण उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। पुरानी खांसी में केले का शर्वत उत्तम है। किसी-किसी को कब्ज करता है।

सेव-सेव वातपित्तनाशक, पुष्टिकारक, कफवर्धक भारी, शीतल, रुचिकारक और वीर्यवर्धक है। रस और पाक में मधुर है। खूब रक्त बढ़ाता है। इसका सेवन हितकारी है।

नारंगी-यह मीठी, खट्टी, भारी अतिकठिनता से पचनेवाली, वीर्यवर्धक और वातनाशक है। खट्टी नारंगी अत्यन्त उष्ण होती है। नारंगी कब्जकारक, खट्टी और उष्ण होने से ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है, अतः उपादेय नहीं। मीठे सन्तरे थोड़ी मात्रा में सेवन कर सकते हैं।

नाशपाती-नाशपाती भारी, वीर्यवर्धक मधुर और त्रिदोषनाशक है। संस्कृत में इसका एक नाम 'अमृतफल' भी है। यह अच्छा फल है।

नीम्बू-नीम्बू उष्ण, पाचक, दीपन, खट्टा, त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिए हितकारी, अतिशय रुचिकर, कटु कषैला, हल्का होता है। कफ, वात, वमन,

खांसी, कण्ठरोग, क्षय, विषूचिका, आमवात, गुल्म और कृमियों को नष्ट करता है। पका हुआ नीम्बू गुणों में श्रेष्ठ होता है, ये कागजी नीम्बू के गुण हैं। ब्रह्मचारी के लिए नीम्बू हानिकारक है, चाहे वह कागजी ही क्यों न हो।

मीठा नीम्बू या शर्बती नीम्बू-मधुर, भारी, वात, पित्त, सर्पविष रक्तविकार, शोथ, वमन, आरुचि तथा तृष्णा को नष्ट करता है। कफसम्बन्धी रोगों को दूर करता है। बलदायक और पुष्टिकारक है।

कागजी नीम्बू और शर्बती नीम्बू में केवल पत्तों का ही भेद है। कागजी के पत्ते छोटे और शर्बती के पत्ते कुछ बड़े होते हैं।

बिजौरा नीम्बू स्वादिष्ट, खट्टा, दीपन, हल्का, रक्तपित्त, कण्ठ और जिह्वा को शुद्ध करता है। हृदय के लिए हितकारी, श्वास, खांसी अरुचि तथा तृषा को नष्ट करता है।

कागजी शर्बती (मीठा, नीम्बू), जम्बीर (बिजौरा नीम्बू), चकोतरा, नारंगी, सन्तरा, बिहारी आदि अनेक भेद नीम्बू के हैं।

इमली-कच्ची इमली अत्यन्त खट्टी, उष्ण, मलरोधक, वातनाशक, अग्निदीपक, रक्तपित्त, कफ और रक्त को दूषित करती है। अतः स्वास्थ्य एवं ब्रह्मचर्य के प्रेमी को इसका सर्वथा सेवन नहीं करना चाहिए। संस्कारविधि वेदारम्भ संस्कार में महर्षि दयानन्द जी ने ब्रह्मचारी के लिए 'न अतिखट्टा अमली आदि' लिखते हुए इमली खाने का निषेध किया है। दक्षिण भारत में इसके खाने का प्रचार बहुत अधिक है, वह हानिप्रद होने से सर्वथा त्याज्य है।

सिंघाड़ा-सिंघाड़ा जलीय फल है। यह शीतल, स्वादिष्ट, भारी, ग्राही और वीर्यवर्धक है, वात तथा कफकारक है, रक्तविकार और दाह को नष्ट करता है।

कालिन्द (तरबूज)-तरबूज शीतल, ग्राही, पित्त, दृष्टि और वीर्य को नष्ट करता है। पकने पर उष्ण, खारी, पित्तकारक, वात और कफ को नष्ट करता है। इसका सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है।

पपीता (एरण्ड खरबूजा)-पका हुआ पपीता, मधुर, रुचिकारक, भारी, मलरोधक, कफकारी, वीर्यवर्धक, वात और उन्माद रोगों को नष्ट करता है। पाचन-प्रणाली को ठीक करने में सहायक है। इसमें रोगों के कीटाणुओं को छिन्न-भिन्न करने की शक्ति है।

खजूर-खजूर, गुरु, शीतल, हृदय के लिए हितकारी और तृप्तिकारक है। रस और पाक में मधुर, कफकारक तथा रक्तपित्त को जीतनेवाली है। बलवीर्यवर्द्धक, कोठे की वायु, ज्वर, अतिसार, कास, श्वास आदि को दूर करती है। यह अधिकतर पश्चिमीय देशों में होती है।

खरबूजा-बलदायक, मूत्रकारक, कोठे को शुद्ध करनेवाला, भारी, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्द्धक, अतिस्वादिष्ट, वात तथा पित्तनाशक है।

दाडिम (अनार)-अनार तीन प्रकार का होता है, मीठा, मीठा और खट्टा तथा केवल खट्टा। मीठा अनार त्रिदोषनाशक, तृषा, दाह, ज्वर, हृदयरोग, कण्ठ और मुख रोगों को दूर करता है। तृप्तिकारक, वीर्यवर्धक, हल्का, कुछ कषैला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्धक है। श्रम, अरुचि और निर्बलता को दूर करता है।

मीठा और खट्टा अनार दीपन करनेवाला, रुचिकारी, कुछ पित्तकारक और हल्का होता है।

खट्टा अनार वातकफनाशक, पित्तकारक, अग्निदीपक और हल्का होता है।

अनारदाना-रुचिकारक, हृदय को प्रिय, दाह और तृषा का शमन करता है। अनार के फूल नाक से रक्त आने को रोकते हैं और इसका वल्कल कृमिनाशक, मलरोधक और रक्तातिसार को दूर करता है।

नारीकेल (नारियल)-नारियल का जल स्निग्ध, स्वादिष्ट, बलदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, बस्तिशोधक, पित्त और पिपासा को नष्ट करता है।

साधारण नारियल स्वादु, पाक में मधुर, भारी, दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला), मदकारक, पित्तनाशक, कृमिवर्द्धक, जठराग्नि को मन्द करता है और कामदेव के बल को बढ़ाता है। अतः ब्रह्मचारी इसका सेवन न करे।

बादाम-बादाम चिकना, गर्म, वीर्यवर्धक, भारी और वातनाशक है। बादाम की गिरी वीर्यवर्धक, बलदायक, कफकारक और वातपित्तनाशक है। रक्तपित्त के रोगी के लिए ठीक नहीं। बादाम की गिरी को सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल दूध या जल के साथ घोटकर पीने से शरीर और मस्तिष्क की खुश्की तथा उष्णता दूर होती है, बलवीर्य की वृद्धि होती है। बादाम का सेवन ब्रह्मचारी को इसी प्रकार से करना चाहिए अन्यथा उष्ण होने से हानिकारक है।

शाक

आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार पत्ते, फूल, फल, नाल, कन्द और संस्वेदज भेद से होनेवाले छः प्रकार के शाक हैं। प्रायः सभी शाक विष्टम्भी कब्ज करनेवाले तथा भारी होते हैं। रूखे, बहुत मलकारक अपानवायु तथा मल को निकालनेवाले होते हैं। पत्ते की अपेक्षा पुष्प, पुष्प की अपेक्षा नाल, नाल की अपेक्षा फल, फल की अपेक्षा कन्द और कन्द की अपेक्षा संस्वेदज शाक उत्तरोत्तर भारी होते हैं।

''शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगाः'' सर्वप्रकार के शाकों में रोग का निवास

रहता है। इसी की पुष्टि चाणक्य ने भी की है-''**शाकेन रोगा वर्धन्ते**'' शाक से रोग बढ़ते हैं। शाक का अधिक मात्रा में सेवन हड्डियों का भेदन, नेत्रज्योति, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वर्ण, रक्त और वीर्य का नाश करता है। और भी अनेक हानियां, द्रव्य गुण जाननेवाले विद्वान् बतलाते हैं।

शाकों में क्षार नमक का भाग अधिक होता है और इनके अधिक सेवन से शरीर में क्षार नमक का भाग अधिक होने से स्वप्नदोष, प्रमेह आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अधिक मात्रा में शाक नहीं खाना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सावाले शाकों का सेवन अधिक बतलाते हैं किन्तु यह शास्त्रविरुद्ध है। जहां शाकों में गुण होते हैं वहां गुणविशेष भी होते हैं। अपनी प्रकृति आदि को विचारकर थोड़ी मात्रा में शाक (सब्जी) का सेवन करना चाहिए। गुण-दोष विचार कर पदार्थों का सेवन करने से ही स्वास्थ्यरक्षा, बल, बुद्धि, आयु, तेज कान्ति आदि की वृद्धि होती है। अत: जो शाक अधिक लाभदायक है और हानि कम करते हैं उन्हीं को चुनकर कुछ विस्तार से लिख रहा हूँ। जो निषिद्ध तथा हानिकारक शाक हैं उनकी सूची इस प्रकरण के पीछे दी है। पाठक लाभ उठावें।

पत्र-शाक

चणे का शाक-चणे का शाक दुर्जर कब्ज करनेवाला, कफ तथा वात के रोगों को बढ़ानेवाला, खट्टा और विष्टम्भकारक है, अत: गुणकारी नहीं होता। पित्तनाशक है तथा दांतों की सूजन को दूर करता है।

मटर का शाक-मटर का शाक मलभेदक, हल्का, स्वादु, शीतल, कषैला, पुष्टिप्रद, वातकारक, कफ और पित्तनाशक होता है। इसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

कसौंदी के पत्तों का शाक-कसौंदी के पत्तों का शाक रुचिकारक, वीर्यवर्धक, खांसी, विष और रक्तविकारनाशक है, वात और कफ के रोगों को दूर करता है, पाचक तथा कण्ठशोधक है। उष्ण होने से सेवन नहीं करना चाहिए।

मेथी-मेथी के पत्तों का शाक बनाकर लोग खाते हैं, यह कषैली, चरपरी, उष्ण और रूक्ष होती है। वात और कफ के रोगियों को इसका औषध रूप में सेवन करने से लाभ होता है। स्वास्थ्य ओर ब्रह्मचर्यप्रेमी को दैनिक भोजन में इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

सरसों का शाक-सरसों का शाक स्वभाव से ही अहितकर=हानिकारक होता है। इसमें मलभाग अधिक होता है, पोषक-तत्त्व नाममात्र में ही होता है। निघण्टुकार ने '**शाकेषु निन्दितम्**' सब शाकों में निन्दित बतलाते हुए लिखा है

कि सरसों का शाक चरपरा, मलमूत्र को अत्यधिक बढ़ानेवाला, भारी, पाक में खट्टा, जलन करनेवाला, गर्म, रूखा और त्रिदोपकारक है। यह स्वादु होते हुए भी हानिकारक है, अतः इसका सेवन सर्वथा नहीं करना चाहिए।

चौलाई का शाक-चौलाई का शाक हल्का, मधुर, शीतल, रूक्ष, रुचिकारक अग्निदीपक, पित्त, कफ तथा रक्तदोपों को हरनेवाला, मलमूत्र को निकालनेवाला सब प्रकार के विपों का नाश और पेट के सभी विकारों को दूर करता है। डॉक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन सी बहुत अधिक होती है।

चौलाई प्रायः सभी प्रान्तों में तथा सभी ऋतुओं में पाई जाती है। आर्द्रभूमि में तथा वर्पा और शीतकाल में चौलाई अधिक होती है। यह समूह के साथ पाई जाती है, इसका क्षुप एक वालिस्त से लेकर डेढ़ हाथ तक देखने में आता है। इसका क्षुप अनेक शाखाओं वाली झाड़ी के समान किन्तु कोमल होता है। इसके फल छोटे-छोटे गुच्छाकार तथा वीज अत्यन्त छोटा और काले रंग का होता है।

चौलाई का एक भेद और है जिसे पानीध तण्डुलीय तथा कञ्चर भी कहते हैं। यह जलीयप्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह हल्की, कड़वी, रक्तपित्तनाशक और वातरोगों को नष्ट करती है। चौलाई की जड़ गरम, कफनाशक, स्त्रियों के रज को रोकनेवाली तथा रक्तपित्त और प्रदररोग को नष्ट करती है। इसी प्रकार अन्य अनेक रोगों में चौलाई का उपयोग किया जाता है।

पालक-पालक का शाक वादी करनेवाला, शीतल, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक तथा मद (नशा), श्वास, रक्तपित्त और विपनाशक है। रुधिर के विकारों को शान्त करता है। उदर के सभी रोगों को दूर करता है। डॉक्टरों के मतानुसार पालक में चूना, लोहा, आयोडीन, क्लोरीन, गन्धकादि नमक आवश्यकता से अधिक मिलते हैं। इसमें जीवनीयतत्त्व (विटामिन सी०) वहुत मात्रा में विद्यमान है। पालक का सेवन भोजन में प्रतिदिन किया जासकता है। सव ऋतुओं तथा सव स्थानों में होता है।

पोदीना-पोदीना रोचक, मधुर, गुरु, हृदय के लिए लाभप्रद और सुखदायक है। कफ, कास, मद, अग्निमान्द्य, विसूचिका, संग्रहणी, अतिसार, जीर्णज्वर और कृमिनाशक है। इसके सेवन से वात और कफ के दोप दूर होते हैं। रक्त को खूव शुद्ध करता है। जठराग्नि को तीव्र करता है। हैजे के दिनों में सेवन करने से हैजा नहीं होता। प्यास को वुझाता है। आंखों के लिए हितकारी है। घर में कोई शाक वनाया जाये, इसके पत्ते भी डाल लेने चाहिएं। इसमें विटामिन ए, पर्याप्त मात्रा में मानते हैं।

बथुआ-बथुआ का क्षुप रक्त तथा हरित पत्र होने से दो प्रकार का होता है। बथुवे का क्षुप (पौधा) एक हाथ से लेकर चार हाथ तक ऊँचा होता है। छोटे बथुवे के पत्ते मोटे, चिकने तथा हरे रंग के होते हैं और बड़े बथुवे के पत्ते बड़े और पुष्ट होने पर लाल रंग के होजाते हैं। बथुआ अधिकतर जौ और गेहूं के खेतों में उत्पन्न होता है। यह शीतकाल तथा गर्मी के आरम्भकाल में भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है, इसके फूल छोटे-छोटे तथा हरे होते हैं, उनमें काले रंग के छोटे बीज निकलते हैं। बथुवे में एक प्रकार का क्षार होता है। डॉक्टर इसमें 'सी' विटामिन बहुत मात्रा में मानते हैं।

बथुवे के गुण

वास्तुकं तु मधुरं सुशीतलं क्षारमीषदम्लं त्रिदोषजित्।
रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनं च मलमूत्रशुद्धिकृत्।।

(राजनिघण्टु)

वास्तूकद्वितीयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्।
सरं प्लीहास्त्रपित्तार्श-कृमिदोषत्रयापहम्।।

(भावप्रकाश)

दोनों ही प्रकार का बथुआ स्वाद में मधुर, खारी, पाक में चरपरा, थोड़ा अम्ल और सुशीत होता है। यह रुचिवर्धक, हल्का, दीपन पाचन करनेवाला, बल वीर्य को बढ़ानेवाला, प्लीहा (तिल्ली), रक्तपित्त ज्वर सब प्रकार का अर्श (बवासीर) और कृमि रोगों का नाश करनेवाला है। तीनों दोषों को जीतनेवाला और रेचक अर्थात् मल-मूत्र की शुद्धि करनेवाला है। इससे पेट की शुद्धि खूब होती है। एक रोगी को मलबन्ध (बन्धा) होगया, सब औषधियां निष्फल होगईं। उस रोगी ने किसी के कहने से बथुआ उबाल छानकर पर्याप्त मात्रा में बथुवे का जल पीलिया, इसी से उसका बन्धा टूट गया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और रोगी बच गया।

वास्तूकोऽग्निकरो रसे च मधुरः पित्तापहश्चाक्षुषः,
स्निग्धो वातविनाशनः कृमिहरः पित्तादिदोषापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः प्रथमतः श्लेष्मामयानां तथा,
शाकानामपि चोत्तमो लघुतरः पथ्यः सदा प्राणिनाम्।।

(शालिग्राम निघण्टु)

बथुआ जठराग्नि को दीप्त करनेवाला, रस में मीठा, पित्तनाशक नेत्रों के लिए हितकारी, स्निग्ध, कृमिनाशक, पित्तादि दोषों को नष्ट करनेवाला, मलमूत्र

शोधक, शाकों में उत्तम और हल्का तथा कफ के रोगवाले मनुष्यों के लिए सदैव हितकारी है।

चरकशास्त्र ने बथुवे में "**भिन्नवर्चस्तु वास्तुकम्**" मल को भेद करनेवाला गुण अन्य शाकों की अपेक्षा विशेष माना है।

लाल बथुआ (चिल्ली)

सक्षारः कृमिजित् त्रिदोषशमनः सन्दीपनः पाचनः,
चक्षुष्यो मधुरः सरो रुचिकरो विष्टम्भशूलापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः स्वरकरः स्निग्धो विपाके गुरु-
र्वास्तूकः सकलामयप्रशमनश्चिल्ली तदेवोत्तमा।।

(सुषेण)

लाल बथुवा, क्षारयुक्त, कृमिनाशक, त्रिदोषशमन करनेवाला, दीपन, पाचन, नेत्रों के लिए हितकारी, सारक, रुचिकारक, विष्टम्भ (कब्ज) और शूलनाशक, मलमूत्र-शोधक, स्वर को उत्तम करनेवाला स्निग्ध, पाक में भारी, सब प्रकार के रोगों को शांत करनेवाला है और यह सबसे उत्तम है।

चिल्ली वास्तुकतुल्या च सक्षारा श्लेष्मपित्तनुत्।
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रघ्नी पथ्या च रुचिकारिणी।।

(राजनिघण्टु)

चिल्ली (लाल बथुआ) बथुवे के समान गुणवाली है। क्षारयुक्त, कफ, पित्त, प्रमेहनाशक, मूत्रकृच्छ्रनिवारक, पथ्य और रुचिकारक है।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम्।। (ह०स०)

बथुआ मधुर, हृदय को हितकारी तथा वातपित्त और बवासीर रोगवालों के लिए हितकारी है।

पुष्पों के शाक

केले के फूलों का शाक-स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल, वातपित्त, रक्तपित्त तथा क्षय को नष्ट करता है। थोड़ी मात्रा में सेवन करना चाहिए।

सहोंजने के फलों का शाक-चरपरा, तीक्ष्ण, गर्म होता है, ब्रह्मचर्य-प्रेमियों को नहीं खाना चाहिए। किन्तु सूजन, कृमि, वात, कफ, विद्रधि, तिल्ली तथा गुल्मरोगों को सेवन करने से दूर करता है। अतः उपरोक्त रोगग्रस्त रोगियों को सेवन करना चाहिए।

सेमल का फूल-रस पाक में मधुर, कसैला शीतल भारी ग्राही वातकारक

और कफ पित्त को नष्ट करनेवाला है। देवियों के दु:साध्य प्रदर को इसके फूलों का शाक घृत में पकाकर सैंधा नमक डालकर खिलाने से नष्ट करता है।

फलों का शाक

कुष्माण्ड-मिठाई के पेठे का नाम कुष्माण्ड है। इसका शाक पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, भारी, पित्त तथा रक्तविकार, रक्तपित्त तथा वातरोगों का नाश करता है। कच्चा पेठा शीतल और पित्तनाशक है। मध्यम पेठा कफकारक है, पका हुआ पेठा कुछ शीतल, स्वादु, खारी, अग्निदीपक, हल्का, वस्ति को शुद्ध करनेवाला तथा मानसिक रोग अपस्मार (मिर्गी), उन्मादादि (पागलपन) को दूर करता है। सब दोषों को जीतनेवाला होता है। ये गुण मिठाई के पेठे के हैं। इसका कुष्माण्डावलेह बनता है, जो असाध्य नकसीर आदि रक्तपित्त के रोगों की रामबाण औषध है। जो बाजार में पेठा बिकता है जिसका शाक प्राय: सभी लोग बाहुल्य से खाते हैं इसमें उपरोक्त गुण नहीं हैं। कुछ विद्वान् तो इसका तामसिक तथा ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक मानते हैं।

पेठा-बाजारी पेठे में मलभाग अधिक होता है, शरीर का पोषकतत्त्व सार भाग नाममात्र ही होता है। वायुरोगों को बढ़ाता है। पेट में आनाह (अफारा) आदि रोग पैदा करता है। जठराग्नि को मन्द करता है। अत: बाजारी शाकवाले पेठे का सेवन नहीं करना चाहिए। मिठाईवाले पेठे का शाकादि बनाकर सेवन करना लाभदायक है किन्तु लोग इसे केवल मिठाई बनाने के लिए समझते हैं, शाक बनाकर नहीं खाते, यह भारी भूल है।

महाकोशातकी (घीया तोरई)-वायु के रोगों को तथा रक्तपित्त को शान्त करती है। इसका शाक अच्छा होता है।

राजकोशातकी (तोरई)-शीतल, मधुर, कफ तथा वातकारक, पित्तनाशक, अग्निदीपक और श्वास, ज्वर, कास और कृमि के रोगों को नष्ट करती है। यह हल्की होने से सभी प्रकार के रोगियों के लिए पथ्य है।

पटोल (परवल के फल)-यह फलों के शाकों में सर्वोत्तम है। यह गर्म, हल्का, पाचक, स्निग्ध, अग्निदीपक और हृदय के लिए हितकारी है। खांसी, कृमि, रक्तविकार तथा त्रिदोष सम्बन्धी रोगों का विनाशक है। यह वीर्यवर्धक ब्रह्मचारियों तथा स्वास्थ्यप्रेमियों के लिए बहुत ही अच्छा शाक है। बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में अधिक होता है।

डिण्डिश (टिण्डा)-टिण्डा वा ढेंढस रुचिकारक, मलभेदक (दस्तावर), बहुत शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्धक है। कफ तथा पथरीरोग को नष्ट करता है। सामान्यतया यह अच्छा शाक माना जाता है।

अलाबू (घीया)-हृदय को प्रिय, पित्त तथा कफनाशक, भारी, वीर्यवर्धक, रुचिकारक और धातु को पुष्ट करनेवाली होती है।

कर्कटी (ककड़ी)-कच्ची ककड़ी शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारक और पित्त को नष्ट करती है। पक्की ककड़ी तृषा (प्यास) अग्नि और पित्तकारक है।

शिम्बी (सेम)-रस तथा पाक में मीठी, शीतल, भारी, बलदायक, दाहकारक, कफकारक, वात और पित्त को नष्ट करती है।

बैंगन-अत्यन्त गर्म होता है। इसका सेवन अर्श (बवासीर), प्रमेह, स्वप्नदोष आदि रोगों को उत्पन्न करता है। ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमी को इसका भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिए। केवल एक बार तथा थोड़ी मात्रा में खाने से ही वीर्यनाश करता है।

शोभाञ्जनफल (सोंजने की फली)-स्वादु, कसैली, कफ पित्त को नष्ट करती है। शूल, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गुल्मनाशक और परम अग्नि दीप्त करनेवाली होती है। मनुस्मृति में शैग्रव-सोञ्जने के फलादि खाने का निषेध किया है।

कन्द-शाक

आलू-आलू का शाक बहुत अधिक मात्रा में तथा सभी देशों में खाया जाता है। परन्तु इसके गुण दोषों के विषय में बड़ा भ्रम है। चरकशास्त्र में आलू के विषय में लिखा है-"**आलूकः कन्दानां प्रकृत्यैव अहिततमानामाहार-विकाराणाम्।**" सब कन्दों में आलू स्वभाव से ही सबसे अधिक अहितकर अर्थात् हानिकारक है। जिस आलू की प्रशंसा करता आधुनिक डाक्टर तथा शिक्षितसमुदाय नहीं थकता वही हमारे ऋषियों की दृष्टि में कन्दों में सबसे अधिक हानिकारक शाक है। प्राचीनकाल में पर्वतों पर जंगली रूप में यह उत्पन्न होता था, इसकी खेती कोई नहीं करता था। न ही शाकरूप में इसका व्यवहार होता था। लगभग दो सहस्र वर्ष होगये तब से यह खेतों में बोया जाने लगा और आज तो यह मानवसमाज के भोजन का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। स्कूल, कॉलेज, गुरुकुल, पाठशाला, पुलिस, सेना, होटल, होस्टल (छात्रावास), सबकी पाकशालाओं में एकमात्र इसका शासन दिखाई देता है। इसके स्वादु और स्थायी (टिकाऊ) होने के कारण यह हमारा प्रिय भोज्य पदार्थ बन गया है। इसके दोषों का किसी को भी ध्यान नहीं। आंखों पर पट्टी बांधकर इसके गुण दोष विचार करे बिना सारा मानवसमाज इसको खाने पर तुला हुआ है। संक्षेप में इसके विषय में लिख रहा हूं विस्तारपूर्वक कभी स्वतन्त्र लेख ही लिखूंगा। आयुर्वेदशास्त्रों के मतानुसार-

आलुकं शीतलं सर्वविष्टम्भि मधुरं गुरु।
सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्षपित्तनुत्।।

आलू शीतल, मधुर, रूक्ष, शुष्क, पचने में भारी व दुर्जर, आलस्यकारक, विष्टम्भी मल को रोककर तथा कठिन करके कब्ज करनेवाला, मलमूत्र को बढ़ानेवाला तथा कामोद्दीपक अर्थात् कामवासना को बढ़ानेवाला है। यूनानी मत में भी वह प्रथम श्रेणी का शीतल तथा रूक्ष है। पक्काशय (मेदे) को बिगाड़ता तथा आनाह (अफारा) करता है। कुछ के मत में खून को खराब करता तथा खुजली उत्पन्न करता है। वायु और कफ को कुपित करता है। यह इतना रूक्ष (खुश्की करनेवाला) होता है कि यदि इससे द्विगुण मात्रा में घी इसके साथ खाया जाये तब भी यह खुश्की ही करता है। खुश्की के कारण मलबन्ध (कब्ज) करता है तथा इससे स्वप्रदोष प्राय: होने लगता है अत: इसके खानेवाले गर्म समझते लगते हैं। वैसे यह शीतल और शुष्क है। दो चार दिन लगातार खाने से स्वप्रदोष वीर्यनाश आदि कुपरिणाम प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं। इसके सेवन से जुकाम खांसी तथा श्वास तक होजाता है। इसके रूक्ष होने से मस्तिष्क में रूक्षता बढ़ती है, जुकाम स्थायी रहने लगता है। आंखों को बहुत हानि पहुंचती है। स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति तथा ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिए। सभी प्रकार के आलुओं में ये दोष पाये जाते हैं। निरन्तर आलू के सेवन से गठियारोग के दर्शन होते हैं। यह मूत्रनलिका में जलन उत्पन्न करता है अत: सुजाक, आतशिक और मूत्रकच्छ्र के रोग इसके सेवन से होते हैं। ग्रीष्मकाल में आलू के सेवन से बहुत अधिक हानि होती है। जिनको कोष्ठबद्धता (कब्ज) का रोग है उनको आलू अधिक हानि करता है। पित्त, वात तथा रक्तसम्बन्धी रोगों में आलू के सेवन से उल्टे परिणाम देखने में आते हैं। यदि इसके रूक्षता के दोष को दबाने के लिए घृत का सेवन इसके साथ अधिक किया जाये तो इसके सेवन से चर्बी अधिक बढ़ती है और पेट भी अधिक बड़ा होजाता है। इसके गुण तो नाममात्र ही इस प्रकार के हैं जैसे विषाक्त दूध, है तो दूध किन्तु विष मिला हुआ है। अत: इसका सेवन भोजन के रूप में सर्वथा नहीं करना चाहिए।

मूली-मूली दो प्रकार की होती है। एक छोटी, संस्कृत में इसे लघुमूलक कहते हैं। यह चरपरी, गर्म, रुचिकारक, हल्की, पाचक-त्रिदोषनाशक, स्वर को उत्तम करनेवाली ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्ररोगनाशक है। दूसरी बड़ी मूली, रूक्ष, गर्म, भारी और त्रिदोष को करनेवाली है। यदि घृत आदि में पकाकर खाईजावे तो त्रिदोषनाशक है। मूली अन्य भोजनों को पचाती है किन्तु

स्वयं कब्ज करती है। बवासीर के रोगी के लिए मूली का शाक अमृत के समान लाभदायक है। यकृत् तथा तिल्ली के रोगी के लिए भी लाभदायक है।

मूली के पत्तों का शाक पाचक हल्का रुचिकारक और गर्म है। घृत से भुना हुआ त्रिदोषनाशक और बिना भुना हुआ कफ तथा पित्तकारक है।

गाजर-गाजर तीक्ष्ण, मधुर, तिक्त, गर्म, अग्नि दीपन करनेवाली, हल्की, ग्राही और रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ तथा वातसम्बन्धी रोगों का नाश करती है। काली गाजर सबसे अच्छी होती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में लोह होता है अत: जिगर को शक्ति देती है तथा जिगरसम्बन्धी सभी रोगों को दूर करती है। खून को खूब बढ़ाती है। निर्धनों का तो यह सेव कहलाती है। इसे खानेवाले शीतकाल में लाल होजाते हैं। वैसे राजसिक है अत: रजोगुण की वृद्धि अवश्य ही करती है। डॉक्टरों के मतानुसार इसमें लगभग सारे विटामिन मिलते हैं। यह कच्ची खाने पर भी अच्छा लाभ करती है। यह चमड़े को सुन्दर बनाती तथा रक्त को शुद्ध करती है। स्वास्थ्य के लिए इसका शाक अच्छा होता है।

गोभी-गोभी का शाक बहुत खाया जाता है। इसके दोषों से लोग परिचित नहीं हैं। यह फूल गोभी, गांठ गोभी और पत्र गोभी के भेद से तीन प्रकार की होती है। फूल गोभी तथा गांठ गोभी, ये दोनों स्वादिष्ट, मधुर, शीतल, बड़ी देर से पचने वाली तथा वायु के रोगों को उत्पन्न करती हैं। पेट के सभी रोगों को उत्पन्न करती है। अजीर्ण तथा कब्ज करना इनका सर्वप्रथम कार्य है। अत: ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति को इनका शाक नहीं खाना चाहिए।

पत्र गोभी भी भारी तथा शीतल है और वायु करती है। मलबन्ध (कब्ज) को दूर करती है। इसमें यह गुण है कि यह पेट की शुद्धि कर देती है। यदि किसी को गोभी खानी हो तो पत्र गोभी ही खानी चाहिए। कुछ लोग इसे अच्छी सब्जी (शाक) मानते हैं। डॉक्टरों के मतानुसार इसमें ए, बी, सी, डी, ई विटामिन पाये जाते हैं।

गृञ्जन (शलगम)-गृजन शब्द हमारे शास्त्रों में तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-१. गाजर, २. शलगम, ३ लहसुन। किन्तु मुख्यतया गृञ्जन का प्रयोग शलगम अर्थ में ही हुआ है, इसके नाम और गुणों को देखकर यही सिद्ध होता है। जो लोग गृंजन का मुख्यार्थ गाजर करते हैं यह उनकी भ्रान्ति है। महर्षि मनु ने मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में '**लशुनं गृंजनं चैव पलाण्डुं कवकानि च**' कहते हुए लहसुन, शलगम, प्याज आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को ही अभक्ष्य बतलाया है, गाजर को नहीं।

राजनिघण्टु में श्री नरहरि ने गृंजन के पर्यायवाची शब्द ये लिखे हैं-

गृंजनं शिखिमूलं च यवनेष्टं च वर्तुलम्।
ग्रन्थिमूलं शिखाकन्दमुक्तं डिण्डीरमोदकम्।।५५।।

(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

यहां पर दिये गये सभी नामों से गृंजन का अर्थ शलगम प्रकट हो रहा है। शिखिमूल और शिखाकन्द उसे कहते हैं जिसकी मूल में शिखा हो और जो शिखावाला कन्द हो। इसी प्रकार वर्तुल गोल भी शलगम ही होता है। यवनेष्ट=यवनों को प्रिय, क्योंकि वे अधिकतर लहसुन, प्याज, शलगम आदि दुर्गन्धित पदार्थों को अधिक पसन्द करते हैं। डिण्डीरमोदक नाम से भी लड्डू जैसी आकृति प्रतीत होती है जो कि शलगम की ही होती है।

इसके गुण-

गृंजनं कटुकोष्णं च कफवातरुजापहम्।
रुच्यं च दीपनं हृद्यं दुर्गन्धिगुल्मनाशनम्।।५६।।

(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

गृंजन, कटु, उष्ण, कफ तथा वात के रोगों को नष्ट करती है, रुचिकारी, दीपन, हृदय के लिए हितकारी दुर्गन्धियुक्त और गुल्मनाशक है। इसमें दुर्गन्धियुक्त बतलाने से स्पष्ट ही होगया है कि यह शलगम ही है क्योंकि शलगम में दुर्गन्ध आती है तथा गाजर में नहीं आती। यदि लहसुन और प्याज का अर्थ किया जाए तो यह भी नहीं होसकता, क्योंकि मनु जी महाराज ने जहां गृंजन का निषेध किया है वहां पर साथ-साथ पलाण्डु और लशुन का भी ग्रहण किया है।

शब्दकल्पद्रुम ने तो सर्वथा ही भ्रम दूर कर दिया है-''गृंजनम् क्ली। मूलविशेषः। शलगम इति ख्यातः।'' गृंजन को लौकिक भाषा में शलगम नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा लिखा है।

वैजयन्ती कोषकार ने गृंजन की पलाण्डु की दश जातियों में गणना की है।

फरुण्डश्च पलाण्डुश्च लक्षार्कश्च परारिका।
गृंजनो यवनेष्टश्च पलाण्डोर्दशजातयः।।२०७।।

(भूमिकाण्डे वनाध्यायः)

वास्तव में यह पलाण्डु (प्याज) की ही जातिविशेष है, इसका आकार सर्वथा प्याज से ही मिलता जुलता है और इसमें भी प्याज की भांति दुर्गन्ध आती है। अतः गृंजन का मुख्यतया अर्थ शलगम ही है, और इसका सेवन करना हानिकारक है तथा मनुस्मृति के अनुसार यह अभक्ष्य पदार्थ है।

रक्तालु (शकरकन्दी)-शकरकन्दी शीतल, मधुर, भारी, कफ तथा वात कुपित करनेवाली, वीर्यवर्धक, पित्तनाशक, तृप्तिकारक, दाद, शोथ, प्रमेह, व्रण, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का नाश करनेवाली, बलकारक, पुष्टिजनक, स्वादु कन्दशाक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी को लाभदायक है। अपनी पाचनशक्ति को ध्यान में रखते हुए यथेच्छ सेवन करना चाहिए।

जिमिकन्द-अग्निदीपक, रूखा, कसैला चरपरा, विष्टम्भी, विशद, रुचिकारक, हल्का तथा कफ और अर्श (बवासीर) रोग का नाशक है। तिल्ली तथा गुल्म को इसका शाक नष्ट करता है। अनेक रोगों को यह नष्ट करता है अतः **'सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते'** सम्पूर्ण कन्दशाकों में जिमिकन्द श्रेष्ठ समझा जाता है। किन्तु यह उष्ण तथा रूक्ष होने से ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है। अतः ब्रह्मचारी तथा सामान्य मनुष्यों को शाक के रूप में इसे नहीं खाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दाद, रक्तपित्त, कोढ तथा खुजली आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

कदलीकन्द-केले का कन्द शीतल, बलदायक, केशों को उत्तम बनाने वाला, अम्लपित्त को नष्ट करनेवाला, अग्निकारक, मधुर और अग्निवर्धक होता है।

मानकन्द-मानकन्द शीतल, हल्का सूजन तथा रक्तपित्तनाशक है।

बिदारीकन्द-बिदारीकन्द पित्तकारक, उष्ण, बलदायक, चरपरा कड़वा, रसायन, आयु, वीर्य तथा अग्निवर्धक है। प्रमेह कुष्ठ कफ तथा वातविनाशक है।

कसेरू-दोनों प्रकार के शीतल, मधुर भारी, वीर्यवर्धक, कफवर्धक, पित्त, रक्त के रोगों तथा दाह रोगों को नष्ट करता है।

रतालू-अरुई मलस्तम्भक, भारी, जड स्निग्ध है अतः कब्ज करती है और कठिनता से पचती है। पच जाये तो बलकारक है। घृत में पकाकर खाने से कफनाशक तथा रुचिप्रद है। तीव्र जठराग्नि वालों को थोड़ी मात्रा में ही खाना चाहिये। कब्ज होने पर लाभ के स्थान पर हानि ही करता है।

कमलकन्द-इसे शालुक भी कहते हैं। यह वीर्यवर्धक, भारी, दुर्जर, पाक में मधर, दुग्धवर्धक, वात तथा कफकारक, ग्राही, रूक्ष, पित्त, दाह तथा रक्तविकार को दूर करनेवाला है। भारी होने से थोड़ी मात्राा में सेवन करना चाहिए।

मूंगफली-मूंगफली अत्यन्त गर्म कन्द है। इसका सेवन ब्रह्मचारी तथा गृहस्थी सभी के लिए हानिकारक है। यह वीर्यसम्बन्धी प्रमेह स्वप्रदोषादि रोगों को उत्पन्न करती है। इसमें तैल अधिक है अतः हानिकारक है। तैल तथा तैलयुक्त पदार्थ केवल बादाम ही श्रेष्ठ है, शेष सभी हानिकारक हैं।

संस्वेदज शाक

संस्वेदज, भूमिच्छत्र, शिलन्धि, कवक, साँप की छत्री, छतौना आदि इनके नाम हैं। यह वर्षा ऋतु में पृथ्वी, गोबर, लकड़ी और वृक्षादि में उत्पन्न होते हैं। ये सभी शाक शीतल, दोषयुक्त, पिच्छिल, भारी और वमन, अतिसार, ज्वर तथा कफसम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करते हैं। अतः इनको खाना मूर्खता है और रोगों को निमन्त्रण देना है। इन निन्दितशाकों का सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिए। हमारे पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) से आये हुये भाई इनका सेवन करते हैं। उन्हें इनका परित्याग कर देना चाहिए। मनु जी ने भी इनका निषेध अभक्ष्य कह कर किया है।

निषिद्ध शाक

कन्द-कच्चा, बिना ऋतु में उत्पन्न हुआ, पुराना, रोगयुक्त, दीमक आदि कीड़ों का खाया हुआ, अग्नि आदि से दूषित, अत्यन्त जीर्ण, रूखा घृत आदि में न पकाया हुआ, निकृष्टभूमि में उत्पन्न हुआ, कठिन, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्प आदि से दूषित अतिसूखा हुआ कन्द नहीं खाना चाहिए। किसी-किसी का तो यहां तक मत है कि मूली को छोड़कर कोई भी कन्द नहीं खाना चाहिए। **'नाश्नीयान्मूलकं विना'** किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं। मनु जी ने निम्न शाकों को अभक्ष्य लिखा है।

लशुन, शलगम, प्याज और सर्प की छत्री को अभक्ष्य बतलाया है। इसी प्रकार जो अन्न शाकादि मल, मूत्र अथवा दुर्गन्धियुक्त खाद से उत्पन्न होते हैं वे कभी भी नहीं खाने चाहिएं। ये पदार्थ ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य और बुद्धि आदि के नाश करने वाले हैं। अतः अपना कल्याण चाहनेवाले विचारशील व्यक्तियों को इनका सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिए क्योंकि यह तामसिक पदार्थ हैं।

अन्न

''अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः'' के अनुसार अन्न ही प्राणाधार है। क्षुधा की शान्ति और जीवननिर्वाह के लिए अन्न का सर्वप्रथम स्थान है। नये और पुराने अन्न के भी गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। नया अन्न अभिष्यन्दी (नेत्र रोग=आंखों का दुःखना आदि) और भारी होता है। एक वर्ष तक अन्न नया रहता है, दूसरे वर्ष तक पुराना और गुणकारी होता है। इसके पश्चात् अन्न नीरस और गुणहीन होता जाता है। पुराने होने पर सभी अन्न भारीपन को छोड़कर हल्के होजाते हैं। जो अन्न अधिक गुणकारी और सात्त्विक हैं वे ही स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उत्तम हैं।

मूंग, मोठ, मसूर, अरहर, उड़द, चणा आदि की दाल बनाकर खाई जाती है, किन्तु इन सबमें मूंग की ही दाल उत्तम है। धन्वन्तरीयनिघण्टु में मूंग को "**सूपश्रेष्ठः**" अर्थात् दाल के लिये सर्वोत्तम बतलाया है। सुश्रुत के मतानुसार मूंग और मसूर को छोड़कर शेष सभी आध्मान=अफारा करनेवाले हैं। **ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः।**

मोठ (वनमुद्गाः)-मोठ के गुण भी मूंग के समान ही होते हैं, विशेषतया ज्वरदाह हारनेवाला है।

उड़द-उड़द, भारी, गर्म, स्निग्ध, मधुर, वातनाशक, कफ, चर्बी, मांस और वीर्य को बढ़ाता है। तृप्तिकारक, बृंहण और विशेषतया इसके सेवन से माताओं के स्तनों में दूध बढ़ता है। यह उष्ण, गरिष्ठ पित्तकारक और राजसिक है, इसका सेवन अल्पमात्रा में करना चाहिये जिनकी जठराग्नि तीव्र है वे ही इसका सेवन कर सकते हैं, मन्दाग्निवाले व्यक्ति को इससे सर्वथा बचना चाहिए।

मसूर-मसूर मधुर, शीतल, रूक्ष, संग्राही, कफ, पित्तनाशक और वायु के रोगों को बढ़ाती है, मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है।

अरहर-अरहर शीतल, रूक्ष, वातकारक, कफ, पित्तनाशक है तथा वात को भी अधिक प्रकुपित नहीं करती। चर्बी, कफ, रक्तपित्त आदि में अरहर का सेवन हितकर है। घी के साथ सेवन करने से त्रिदोषनाशक है।

महाकाय (मक्का)-मक्का शीतल, विष्टम्भी, रूक्ष, वातकारक, कफ पित्तनाशक और तृप्त करनेवाली है। कच्ची मक्का रुचि और पुष्टिकारक है।

मांस-भक्षण

आमिष कहिये या मांस, दोनों का अभिप्राय एक ही है। मांस वह पदार्थ है जिसकी प्राप्ति बिना प्राणिहिंसा के नहीं होसकती, इसलिए "**अहिंसा परमो धर्मः**" के अनुसार धार्मिक मानवसमाज में मांसभक्षण का प्रतिषेध सदा से रहा है।

"**अमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम्**" जिस पदार्थ के भक्षण से मनुष्य रोगी होजाये वह आमिष कहलाता है। कैंसर, कोढ, गर्मी के समस्त रोग, दांतों का गिर जाना इत्यादि भयंकर रोग मांसभक्षण से होजाते हैं।

प्राचीन भारत में "**घृतं वै बलम्**" "**दुग्धं वै बलम्**" जिस समय घी और दूध को साक्षात् बल समझकर प्रयोग में लाया जाता था उस समय मानव स्वास्थ्य उन्नति के शिखर पर था, सौ वर्ष से पहले मरना अकालमृत्यु और पाप समझा जाता था, तीन तीन, चार-चार सौ वर्ष तक की आयु का भोग करते थे। मानव की आयु

गेहूं-गेहूं मधुर, स्निग्ध, भारी, अतिशीतल वात-पित्तनाशक, कफकारक, बलदायक, वीर्य तथा आयु को बढ़ानेवाला, सन्धानकारक, शरीर को स्थिर रखनेवाला, वर्ण को सुन्दर करनेवाला, रुचिकारक, किंचित् रेचक और सर्वोत्तम भोजन है। डॉक्टर लोग इसमें ए,बी,जी विटामिन और ७५।। प्रतिशत शक्कर तथा ११ प्रतिशत प्रोटीन मानते हैं।

जौ-जौ शीतल, मधुर, कसैला, बलदायक, मेधा, अग्नि और वीर्य को बढानेवाला, स्वर तथा वर्णकारी, अत्यन्त वायुकारक, पीनस, श्वास, कास, प्रमेह, तृषा, मेद तथा त्वचा के रोगों का नाशक है। रक्त और पित्त को शान्त करता है।

चावल-शीतल मधुर वीर्यवर्द्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफवर्द्धक मेधा के लिए हितकारी और अल्पमल लानेवाले हैं।

साँठी चावल, मधुर शीतल हल्का, मल को बाँधनेवाला, स्निग्ध, कोमल, त्रिदोषनाशक और ज्वर को नष्ट करता है। यह सबसे उत्तम होता है।

चणा-चणा शीतल, मधुर, कषैला, रूक्ष, विष्टम्भी, कुष्ठ, कफ, पित्त और वीर्यनाशक है तथा घी के साथ खाने से त्रिदोषनाशक होता है।

नवीन मतानुसार चणे को बलदायक और वाजीकरण माना जाता है किन्तु प्राचीन आयुर्वेद के मतानुसार चणा पुंस्त्वनाशक अर्थात् वीर्य को नष्ट करनेवाला है। महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में-"**चणकाः पुंस्त्वनाशनाः**" (सूत्रस्थान अ० ४६ श्लोक ३२) लिखते हुए चणे को पुंस्त्वनाशक बतलाया है और इसी प्रकार धन्वन्तरि जी महाराज ने अपने निघण्टु में भी "**कफास्त्रपित्तपुंस्त्वघ्नाश्चणका वातला हिमाः**" चणे को पुंस्त्वशक्तिनाशक लिखा है। अतः ब्रह्मचारी के लिए चणे का सेवन हानिप्रद है।

जुआर-जुआर भारी, मलरोधक, शीतल, रूक्ष, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट, तृषा, पित्तनाशक और रुधिर के विकारों को शान्त करती है। राजनिघण्टु में जुआर "**पशूनामबलप्रदम्**" पशुओं के लिए बलकारक नहीं होती, ऐसा लिखा है।

बाजरा-बाजरा उष्ण रूक्ष बल कान्तिदायक अग्निदीपक, वात, कफनाशक, पित्तप्रकोपक, दुर्जर=कठिनतात से पचनेवाला वीर्यनाशक और स्त्रियों की कामशक्ति को बढ़ाता है। दूध, दही, आदि के साथ सेवन करने से इसकी उष्णता कुछ न्यून हो जाती है।

मूंग-मूंग शीतल, मधुर, हल्का अग्निदीपक, स्वादु, कफ, पित्त के विकारों को शान्त करनेवाला, कुछ वातकारक, नेत्रों के लिए हितकारी, किंचित् रेचक और पथ्यतम है।

का माध्यम सौ वर्ष से कम न था। परन्तु आज भारत में मानव की आयु का माध्यम २७ वर्ष है। यह सब मांसभक्षण का ही परिणाम है।

इतना भी तब है जब कि मांस के साथ अन्न तथा घी दूध आदि का प्रयोग भी करते हैं। यदि केवल मांस का ही मानव को प्रयोग कराया जाए तो मानव जीवन असम्भव है। क्योंकि मानव का स्वाभाविक भोजन मांस नहीं है।

कहा जाता है कि भारत तो उष्णप्रधान देश है यहां का जल वायु भले ही मांसभक्षण के विपरीत हो परन्तु इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि शीतप्रधान देशों में मांसभक्षण अनुकूल रहेगा। इसलिए लोगों ने मांस को अपनाया।

परिणाम सामने है, शीतप्रधान देशों के जीवन का भी ह्रास हो रहा है। उनकी आंखें बिल्ली जैसी दिखाई देती हैं, कैंसर, कोढ आदि उपरोक्त रोगों के ग्रास हो रहे हैं, जब रोग बढ़े तो बुद्धिमान् लोगों ने अन्वेषण करना प्रारम्भ किया।

लन्दन वैजीटेरियन एसोसिएशन की सैक्रेटरी कुमारी एफ०ई० निकल्सन ने १० सहस्त्र बच्चों को निरामिषभोजन कराया और दूसरी ओर लन्दन काउण्टी कौंसिल द्वारा एक दूसरे भोजनालय में उतने ही बच्चों को मांससहित भोजन कराया। ६ मास के उपरान्त दोनों दलों के बच्चों की परीक्षा डॉक्टरों द्वारा कीगई। यह जानकर प्रसन्नता होगी कि निरमिषभोजी बच्चों का स्वास्थ्य अधिक अच्छा रहा। उनका भार अधिक निकला, उनके पुट्ठे सुदृढ़ थे तथा चमड़ा अधिक स्वच्छ था।

अब लन्दन काउण्टी कौंसिल की प्रार्थना पर और उसी की देखरेख में लन्दन वेजीटेरियन एसोसिएशन द्वारा लन्दन के निर्धन से निर्धन निवासियों को सहस्त्रों की संख्या में निरामिष भोजन दिया जाता है।

कहा जाता है कि मांसभक्षण से सैनिकों का स्वास्थ्य ठीक रहता है, लड़ने की शक्ति आती है, इसलिए सेनाओं में मांस का प्रयोग किया गया परन्तु अन्वेषण करने पर परिणाम विपरीत निकला। है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रो० शिटेएडन पी०एच०सी०सी०एल०डी०डी० ने निम्न प्रयोग किया है।

अमेरिकन सिपाहियों के साधारण दैनिक भोजन में ७५ औंस ठोस भोजन रहता है। इस ७५ औंस में २२ औंस कसाइयों के यहां का मांस होता है। इन सिपाहियों तथा व्यायाम करनेवालों का भी भोजन का परिमाण एक प्रकार से सारे का सारा मांस तथा ठोस वस्तुओं का कुछ अंश भी निकालकर केवल ५१ औंस कर दिया गया। नौ मास तक उन्हें इस भोजन पर रखा गया। यद्यपि इस भोजन में परिवर्तन करने से पहले उनके शरीर का पूर्ण विकास होचुका था और देखने में

ऐसा प्रतीत होता था कि अब इससे अधिक शक्ति इनमें नहीं आयेगी परन्तु पुनरपि नवें मास के अन्त में उनमें पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति आगई और उनका स्वास्थ्य भी पहले से कहीं अच्छा होगया। यन्त्र के द्वारा ठीक-ठीक नापने से पता चला कि उनकी शक्ति में लगभग ५० प्रतिशत वृद्धि हुई तथा वह सरलता से अधिक ठोस काम करने लगे। उनमें अधिक प्रसन्नता आगई तथा उनके स्वास्थ्य में उन्नति हुई और जब उनको इस बात की स्वतन्त्रता देदीगई कि वे चाहें तो अपना पिछला भोजन प्रारम्भ कर सकते हैं तो उनमें से किसी ने भी पहला मांसवाला भोजन करना स्वीकार नहीं किया। यदि उपरोक्त प्रोफेसर साहब कम किए हुए भोजन के स्थान में दूध २५ औंस बढ़ा देते तो परिणाम बहुत ही बढ़िया होता।

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन शाक-सब्जी, दूध-घी और अन्नादि ही है, मांस नहीं। क्योंकि मनुष्य के शरीर की बनावट ही ऐसी है। मांस जिन पशु-पक्षियों का भोजन है उन्हें परमात्मा ने नुकीले दांत तथा पंजे, ऐसे दिए हैं जो शीघ्रता से मांस में घुस सकें, साथ ही मांसभक्षी पशु जीभ से चपर चपर करके पानी पीता है। उसे भागते हुए पसीना भी नहीं आता। उत्पत्ति के समय उसके बच्चे की आंखें बन्द होती हैं। बिना सिखाये वह अपने भक्ष्य पशु पर आक्रमण कर देता है। बिल्ली का बच्चा फल को उठाकर भले ही मुंह में देले, आक्रमण करने का साहस रखता है। मनुष्य का बच्चा नहीं।

मनुष्य की भोजननलिका बहुत लम्बी होती है,जिसमें मांस जैसा गिरिष्ठ पदार्थ बड़ी कठिनता से पचता है। पचाने के लिए शराब पीनी पड़ती है। कहा जाता है कि जो मांस खाता है वह शराब अवश्य पीता है।

मांसभोजी पशु की भेजननलिका छोटी होती है। उसमें मांस शीघ्र पच जाता है।

मनुष्य के उदर में कौन पदार्थ कितने समय में पचता है उसकी तालिका निम्न है।

	नाम	अवस्था	पचने का समय
१	चावल	उबला हुआ	१ घण्टा
२	सेव	पका हुआ	१।। घण्टा
३	जौ	पका हुआ	२ घण्टा
४	आलू	भुना हुआ	२। घण्टा
५	रोटी		३। घण्टा

६	दूध	गर्म	२ घण्टा
७	बकरे का मांस		३ घण्टा
८	शोरबा		३। घण्टा
९	मुर्गी का मांस		४ घण्टा
१०	मछली		४। घण्टा
११	सूअर का मांस		५ घण्टा
१२	गाय का मांस		५।। घण्टा

गेहूं चावल आदि अन्न, फल, दूध, घी आदि पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन है, इन्हें यह बिना पकाये भी उपयोग में लासकता है। विज्ञान यह बतलाता है कि पकने या ऊपर से नमक मिर्च डालने से पदार्थ की शक्ति कम होती है, इसलिए प्राकृतिकता इसी में है कि जस रूप में पदार्थ हो उसी रूप में प्रयोग में लाया जाये। परन्तु मांस बिना पकाये मनुष्य प्रयोग में नहीं लासकता। इसलिए सिंह, भेड़िया, कुत्ते और बिल्ली को मांसभक्षी कहा जा सकता है जो अपने आप मारकर ताजा मांस खाते हैं, मनुष्य को नहीं।

शक्ति की दृष्टि से मांस की स्थिति निम्नतालिका से ज्ञान होजायेगी-

पदार्थ	प्रोटीन	चरबी	कार्बोज	खनिज	जल
गेहूं	११.४७	२.०४	७०.९०	३.१४	११.८३
गेहूं का आटा	१०.७	१.१	७५.४	०.५	+
गेहूं का मैदा	७.९	१.४	७६.४	०.५	+
गेहूं का चोकर	१६.४	३.५	४३.६	६	१२.५
मसूर की दाल	२५.४७	३.०	५५.७३	+	+
मूंग	२३.६२	२.६९	५३.७५	+	+
उड़द	२२.३३	१९.५	५५.०६	+	+
अरहर	२१.७०	२.५	४५.०६	+	+
बादाम	२४.००	५४.००	१०.०	३०	६.०
मूंगफली	२७.५	४४.५	१५.७	२.५	७.५
गाय का दूध	३.५	४.००	३.५	०७.५	८७.२५
भैंस का दूध	६.११	७.४५	४.१७	०.८७	७१.४०
बकरे का मांस	१८.००	५.४	+	१.०	७६.७
गाय बैल का मांस	२०.००	१.५	०.६	१.२	७६.७
मुर्गे का मांस	२२.७	४.१	१.३	१.१	७४.४
अण्डे की जरदी	१६.१२	३१.३९	+	१.०१	५१.३

आजकल यह युक्ति दी जाती है कि जहां पर माँस के अतिरिक्त कुछ प्राप्त ही नहीं होसके वहां फिर क्या किया जाये? रूस का टण्ड्रा प्रान्त है वहां कुछ उत्पन्न ही नहीं होता। हरिण को मारकर उसके मांस से ही निर्वाह वहां के लोग करते हैं। परन्तु परमात्मा ने जहां मनुष्य को उत्पन्न किया है वहां उसके खाने के लिए खाद्य पहले उत्पन्न कर दिया है। टण्ड्रा में भी हरिण जब नदी तालाबों पर जमी हुई काई से अपना निर्वाह कर सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं कर सकता?

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम.ए. एक बार रोगी होगए, डॉक्टरों ने परामर्श दिया कि यदि गुरुदत्त जी मांस खालें तो बच सकते हैं। पं० गुरुदत्त जी ने उत्तर दिया कि यदि मैं मांस खाने पर अमर होजाऊं, पुनः मरना ही न पड़े तो विचार कर सकता हूँ। डॉक्टर चुप होगये।

अंग्रेजीभाषा के ख्यातनामा साहित्यकार वर्नाडशाह ने मांस का परित्याग कर दिया था। वह मांसोंवाले सहभोजों में सम्मिलित नहीं होते थे। डॉक्टरों ने उनसे कहा कि मांस न खाओगे तो मर जाओगे। उन्होंने कहा मुझे परिक्षण कर लेने दो, यदि मैं न मरा तो तुम निरामिषभोजी बन जाओगे। वर्नाडाशाह लगभग १०० वर्ष की आयु के होकर मरे और मरते समय तक स्वस्थ रहे। उन्होंने एक बार कहा था मेरी स्थिति बड़ी गम्भीर है, मुझ से कहा जाता है कि गोमांस खाओ तुम जीवित रहोगे। मैंने अपनी वसीयत लिखदी है कि मेरे मरने पर अर्थी के साथ विलाप करती हुई गाड़ियों की आवश्यकता नहीं। मेरे साथ बैल, भेडें, गायें, मुर्गे और मछलियां रहेंगी क्योंकि मैंने अपने साथी प्राणियों को खाने की अपेक्षा मरना अच्छा समझा है। हजरत नूह की किश्ती को छोड़कर यह दृश्य सबसे अधिक उत्तम और महत्त्वपूर्ण होगा।

माँस मनुष्य को रोगी करनेवाला अभक्ष्य पदार्थ है। मनुष्य को इससे सदा दूर रहना चाहिए।

अण्डा

अण्डा भी मांस में ही सम्मिलित है किन्तु कुछ लोग अण्डे को मांस से पृथक् मानने लग गये हैं और कहते हैं कि अण्डे में जीव नहीं होता अतः इसको खाने तथा भक्ष्यपदार्थ मानने में कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यदि थूक-खकार मल-मूत्रादि के खाने से उत्पन्न होनेवाला अण्डा भी भक्ष्य पदार्थ है तो फिर संसार में अभक्ष्य पदार्थ ही क्या रह गया?

''अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च'' (मनु०) के अनुसार हमारे शास्त्रकारों ने गन्दगी से उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थों को अभक्ष्य ठहराया है।

अण्डे में जीव न मानना भी बुद्धिसंगत नहीं। जब मुर्गी अण्डज है। अण्डे से बच्चा उत्पन्न होता है तो उसमें जीव क्यों नहीं? अण्डा खानेवाले स्वार्थियों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मिथ्या युक्तियां देनी प्रारम्भ करदी हैं। यदि दुर्जनतोष न्याय से अण्डे में जीव न माना जाये तो क्या सभी निर्जीव पदार्थ भक्ष्य हैं। यों तो मल-मूत्र भी इसी श्रेणी में आजायेगा। जीव का होना या न होना भक्ष्य पदार्थ का लक्षण नहीं।

हमारे शास्त्रों में माँसभक्षण का सर्वथा निषेध है। महर्षि मनु लिखते हैं- "**वर्जयेन्मधु मांसञ्च**" मद्य और मांस सर्वथा छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार राजर्षि चाणक्य ने "**मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम्**" (चाणक्य राजसूत्र ५६२) सभी मनुष्यों के लिए मांस-भक्षण अनुचित बतलाया है। भोज्य-पदार्थों का वेद भगवान् ने कितना स्पष्ट निर्देश किया है-

"**अजीजन औषधीर्भोजनाय**" (ऋ० ५।८३।१०) अर्थात् भोजन के लिए जौ, गेहूं, चावल आदि औषधियां (**औषधयः फलपाकान्ताः** मनु०) उत्पन्न की हैं। अतः उन्हीं का सेवन करना चाहिये।

अण्डा खाने के पक्ष में एक यह भी युक्ति दी जाती है कि इसमें प्रोटीन है। प्रोटीन की अधिक आवश्यकता केवल वृद्धि-अवस्था में ही होती है अर्थात् तीस चालीस वर्ष तक। साथ ही वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि मांस की प्रोटीन मनुष्य के शरीर के लिए उपयुक्त नहीं। दूध, दही, छाछ, गेहूं, चना, मटर और दालों में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होती है और यही शरीर के लिए उपयुक्त है।

विटामिन (जीवनीयतत्त्व) की दृष्टि से भी अण्डे को कोई महत्त्व नहीं दिया जासकता। गोदूध में ए.बी.डी.जी. विटामिन विद्यमान हैं। अंगूर, गेहूं, चना, लोभिया, हरे मटर आदि में ए.बी.सी.डी. विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस प्रकार निरामिष भोजन से ही मानव को सभी जीवनीय तथा पोषकतत्त्व और खनिजपदार्थों की यथोचित प्राप्ति होजाती है, फिर मांस मछली और अण्डे आदि अभक्ष्य पदार्थों को खाकर अपने तन-मन तथा आत्मा को दूषित करना महामूर्खता और पाप है।

अधिक दुःख की बात तो यह है कि अहिंसा का ढोल पीटनेवाली सरकार भी मांस मछली अण्डे आदि का प्रचार कररही है। मत्स्य उत्पादन बढ़ाओ, मुर्गियां पालो, जिससे अण्डे अधिक मिल सकेंगे इत्यादि प्रचार सरकार द्वारा किया जारहा है। लाखों रुपया इस कार्य में नष्ट किया जारहा है। मत्स्यपालन योजना बनाई जारही है। मुर्गी विकासकेन्द्रों की स्थापना और मुर्गी-प्रदर्शनियों का

उद्घाटन होरहा है। अभी ८ जनवरी को बम्बई में मुर्गी-प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय कृषिमन्त्री श्री पंजाबराव देखमुख़ ने बताया है कि-

''आगामी द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ७० लाख रुपये की लागत से विभिन्न क्षेत्रों में १४० मुर्गी विकासकेन्द्र स्थापित किए जायेंगे। सरकार ने सम्प्रति १५ केन्द्रों के खोलने की स्वीकृति प्रदान की है।''

राज्याधिकारियों अथवा जनता के प्रतिनिधियों को चाहिए कि वे इस जघन्यप्रवृत्ति को रोकें। राष्ट्रहित के लिए राज्य को चाहिए कि वे प्रचार के स्थान में इस पर प्रतिबन्ध लगावे। आशा है कि अधिकारी महानुभाव इस ओर ध्यान देंगे और खाद्यसमस्या को सुलझाने के लिए प्राचीन साधन का उपयोग करेंगे जिसका उपनिषद् में निर्देश है-''**अन्नं बहु कुर्वीत**''।

मद्यपान

अंग्रेजी सभ्यता ने भारत को मांसभक्षण के साथ ही दूसरी भयंकर वस्तु प्रदान की है वह मद्य (शराब) है। इससे मनुष्य का शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तीनों ही बिगड़ जाते हैं। गत महायुद्ध में जहां एक करोड़ प्राणी युद्ध के द्वारा नष्ट हुए और डेढ़ करोड़ महामारी के द्वारा मरे वहां दो करोड़ प्राणी शराब के द्वारा नष्ट हुए।

प्राचीन भारत में शराब पीने की प्रथा नहीं थी। सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यन्त दस बीस, सौ, पचास नहीं, लाखों शताब्दियों तक धार्मिक मानव समाज का खान पान अच्छा रहा। सब सात्त्विक आहार और पान करते थे। परन्तु महाभारत के उपरान्त वैदिक शिक्षा के अभाव में शराब आदि की प्रथा चली। महात्मा बुद्ध ने शराब के विरेध में लोकमत को उभारा, उन्होंने कहा-

वेश्या और सुरापान दोनों ही त्याज्य हैं। वेश्या धन का और सुरा परिवार का हरण करके मनुष्य को ऐसा बना देती है कि उसका मूल्य शून्य जितना भी नहीं रह जाता। मनुष्य समाज के कल्याण के लिए नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से इस अभिशाप का अन्त होना ही चाहिए। उन्होंने मनुष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''मनुष्यो! तुम सिंह के सम्मुख जाते हुए भयभीत न होना यह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे शिर झुकाने से भयभीत न होना, यह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत शिखर से तालाब में कूद पड़ने से भयभीत न होना, यह तप-साधना है। तुम दहकती हुई अग्नि-ज्वालाओं से विचलित न होना, यह स्वर्ण परीक्षा है। परन्तु सुरा देवी से सदैव भयभीत रहना, क्योंकि यह पाप और अनाचारों की जननी है।''

उन्होंने राजाओं को चेतावनी दी कि जिस राजा के राज्य में सुरा देवी आदर पावेगी, वह राज्य कालवेदि पर नष्ट होगा, वहां न औषधि उपजेगी, न अनाज होगा, न वृद्धि होगी, यह महाहिंसा है।

कौटिल्य ने अपने समय में मद्य को बन्द कर दिया था और मद्य की दुकानों पर ऋतुओं के अनुकूल भोजन रखवा दिये थे। भोजनपात्रों को सुगन्धित फूलों से ढक दिया था। जो व्यक्ति उस भोजन को करता था वह मद्य को छोड़ देता था। उस समय सुरापान बन्द होगया था। वह निषेध सैकड़ों वर्षों तक चलता रहा। ६२९ ई० में चीनी यात्री हुआनस्यांग भारत आया और १६ वर्ष तक भारत में रहा, उस समय मद्यपान भारत में न था, यहां तक कि औरंगजेब के समय में भी सुरापान न था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी डॉक्टर बर्नियर ने, जो औरंगजेब के समय भारत में आया था और पर्याप्त समय तक भारत में ठहरा था, उसने लिखा है कि दिल्ली में शराब की एक भी दुकान न थी।

अंग्रेज भारत में आये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी शराब पीते थे। कम्पनी ने मद्यपान को प्रोत्साहन दिया, दिन प्रतिदिन प्रचार शराब का बढ़ने लगा। ताड़ी के वृक्षों पर टेक्स लगा दिया गया। शराब बनाने और बेचने के लिए ठेके दिए जाने लगे जिससे ठेकेदार शराब का प्रचार करें। कम्पनी के इस प्रोत्साहन का भारी प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को देखते हुए एक बार स्व० केशवचन्द्र सेन ने कहा था कि १० शिक्षित बङ्गालियों में से ९ छिपकर शराब पीते हैं। सन् १८८८ ई० में लन्दन के हाउस ऑफ कामन्स में शराब पर बहस हुई, तो मिस्टर केनी ने भारतवासियों का पक्ष लेते हुए अंग्रेज सरकार की नीति की तीव्र आलोचना की थी। उन्होंने शराबसम्बन्धी सरकार की दूषितनीति के सम्बन्ध में कहा था कि यदि सरकार अपनी आय को प्रति दशवें वर्ष दुगुनी करने की वर्तमान नीति को स्थिर रखेगी तो भारत ३० वर्ष में पृथ्वी तल पर एक पक्का शराबी देश होजायेगा।

शराब से पाचनशक्ति नष्ट होजाती है। नीचे से शरीर पीला पड़ने लगता है परन्तु देखने में चेहरा लाल दिखाई देता है। सनक और दीवानापन (पागलपन) को लाती है। श्वास और दमे की बीमारी को उत्पन्न करती है। कलेजे गुर्दे तथा आमाशय और रक्तस्नायुओं को भीतर सुखा देनेवाली है। अस्वाभाविक रीति से रोगजन्तुओं को शरीर के भीतर प्रविष्ट कर देती है। जिससे शरीर के अवयव और ज्ञानतन्तु बिगड़ जाते हैं, निमोनियां श्वास, तपेदिक, शोष आदि संघातक रोग उत्पन्न होने लगते हैं और पीढ़ियों तक चलते रहते हैं। आक्सीजन के प्रचार को रोककर चर्बी को बढ़ाती है। नसों और पुट्ठों की छोटी सेलों को नष्ट करके उनका बढ़ना रोक देती है।

यूरोपवाले भी शराब के दुष्परिणामों का अनुभव करने लगे हैं। वहां के हस्पतालों में शराब का औषधि के रूप में अधिकता से प्रयोग होता था। चीरफाड़ के उपरान्त प्रायः हस्पतालों में बराण्डी हृदय की उत्तेजना के लिए प्रयोग में लाई जाती थी, परन्तु अब इसका प्रयोग बन्द कर दिया है।

आस्ट्रेलिया में सन् १८९१ में एक सहस्र पौण्ड से अधिक की शराब एक हस्पताल में प्रयोग में लाई गई थी। उसी हस्पताल में सन् १९१४ ई० में ४ पौण्ड मूल्य की शराब प्रयोग में लाई गई।

अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक तथा मेडिसन रिसर्च शन एसोसिएशन के प्रधान श्री डॉ० हार्वी बेली ने शराब के विषय में अन्वेषण किया है। उन्होंने एक मत से स्वीकार किया है कि शराब कोई पौष्टिक पदार्थ नहीं है। यह एक निरा विषैला पदार्थ है। इसलिए ह्विस्की और ब्राण्डी दोनों ही औषधि की श्रेणी से अलग कर दीगई हैं।

प्रसिद्ध डॉक्टर लेथेवे की परिभाषा में "जो खाद्य पदार्थ जीवित शरीर की नशों की चेतनशक्ति को नष्ट करता है अथवा जीवन का ह्रास करता है वह विष है।"

पर्याप्त समय होगया ब्रिटेन और भारत के डॉक्टरों ने मिलकर निम्न विज्ञप्ति निकाली थी-

१. वैज्ञानिक दृष्टि से यह निश्चय होगया है कि शराब कोकिन, अफीम और अन्य मादक द्रव्य विष हैं।
२. भारत जैसे गर्म देश में इनका थोड़ा भी प्रयोग स्थायीरूप में हानिकारक है।
३. बहुत दशाओं में शराब सन्तान के लिए हानिकारक है।
४. प्लेग मलेरिया और क्षय को रोकने में शराब व्यर्थ है।
५. यही बात अन्य नशों के सम्बन्ध में भी कही जासकती है।

"यथा राजा तथा प्रजा" के सिद्धान्त के अनुसार राजा पर अपने तथा प्रजा के सब प्रकार के रक्षण का उत्तरदायित्व होता है। अलाउद्दीन खिलजी ने जब अपनी अवनति और गिरावट का कारण शराब ही को अनुभव किया तो उसने सब के सामने अपनी शराब से भरी हुई सुराही को भूमि पर फैंक दिया और महल के समस्त मूल्यवान् प्याले तथा सुराहियों को सबके सामने लुढ़का दिया और शराबबन्दी का नियम लागू कर दिया। पीनेवाले को कड़ा दण्ड दिलवाया। यहां तक कि भूमि में गढ़े खुदवाकर शराब न छोड़नेवालों को गड़वा दिया। परिणाम

सामने है, मद्यपान मिट गया था। आज भी हमारी सरकार के कर्मचारी और जनता के प्रतिनिधि धारासभाओं तथा लोकसभा के सदस्य यह समझें कि शराब बड़ी बुरी चीज है, देश के उत्थान में शराब बाधक है तो तत्काल शराबबन्दी होसकती है। कतिपय प्रान्तों ने विचार किया है, वे बधाई के पात्र हैं। शराब संसार के गुरुराज भारत के मथे पर कलंक, राम कृष्ण दयानन्द और गांधी के नाम को धब्बा लगानेवाली है। इसका जितना भी शीघ्र बहिष्कार हो श्रेयस्कर होगा।*

तम्बाकू

तम्बाकू के पौधे का विवरण हमारे प्राचीनग्रन्थों में नहीं मिलता। कहा जाता है कि तम्बाकू पीन की प्रथा पहले चीन में थी परन्तु अनुसन्धान करने पर प्रतीत हुआ कि चीन में पहले यह प्रथा नहीं थी, इसलिए भारत ही क्या समस्त एशिया में तम्बाकू का किसी को ज्ञान नहीं था।

तम्बाकू की खेती सर्वप्रथम अमेरिका में प्रारम्भ हुई। सन् १६०७ ई० में जेम्सटाउन विरगिनिया कालोनी में तम्बाकू बोया गया। आठ वर्ष तक इसका विस्तार किया गया और १३ वर्ष के उपरान्त सन् १६२० ई० में तम्बाकू व्यापार की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु बन गयी। उस समय यह अद्‌भुतसी वस्तु प्रतीत होती थी। व्यापारिक दृष्टि से इसका भारी प्रचार किया गया। समाचारपत्रों में इसका विज्ञापन किया गया। नवीन समाचारपत्र इसके प्रचार के लिए निकालेगये। विक्रय साहित्य बंटवाया गया। परिणाम सामने है, तम्बाकू संसार में सर्वत्र फैल गया।

तम्बाकू का सबसे बड़ा प्रचारक जार्ज वाशिंगटन हिल था। इसने करोड़ों रुपये तम्बाकू के विज्ञापन पर स्वाहा कर दिये। सुप्रसिद्ध लेखक माइक गोल्ड ने जार्ज वाशिंगटन हिल के विषय में "इस विलक्षण बुद्धिवाले सिग्रेट के पक्षपाती ने अपने देश के लिए एक लाख झूठ बोले" नामक लेख में लिखा है कि जार्ज वाशिंगटन हिल एक मदोन्मत्त अद्‌भुत लड़का था।

सन् १८१७ ई० में उसने अमेरिका को विश्वास दिलाया और कहा कि देश का स्वास्थ्य, धन और प्रसन्नता केवल सिग्रेट-व्यवहार और उसी के व्यापार पर निर्भर है और वह चालाक लड़का अपने इस युक्तिपूर्वक कार्य में बहुत अधिक सफल हुआ। क्योंकि अमेरिका में ही सिग्रेट की खपत प्रतिवर्ष तीन अरब रुपये से बढ़कर तीन सौ अरब तक बढ़ गयी।

---

*अधिक ज्ञान के लिए हमारी "पापों की जड़ अर्थात् शराब" पुस्तक पढ़ें।

इसी प्रकार जार्ज वाशिंगटन हिल ने स्त्रियों में भी तम्बाकू का भारी प्रचार किया। अविवाहित लड़कियों या उन विवाहित लड़कियों के लिए जो अपने पतियों से पृथक् रहना चाहती थीं, उन सबमें हिल ने यह नारा लगाया कि प्रियतम पति के बिना किसी भी छाप की सिग्रेट को पीने से आनन्द का अधिक भास होगा तथा स्वास्थ्य और सौन्दर्य भी बना रहेगा। पहले स्त्रियां तम्बाकू के व्यसन से दूर रहती थीं, परन्तु हिल की चाल सफल हुई। स्त्रियां भी तम्बाकू का प्रयोग करने लगीं। परिणाम यह हुआ कि स्त्रियां भी विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहने लगीं।

वैफेलो विश्वविद्यालय द्वारा दिये गये डॉक्टरों के एक सहभोज में जोन्स हो पार्कन्स के श्री डॉ० विलियम रेन होफ ने बताया कि स्त्रियों में फुफ्फुस के कैंसर या मर्कट के रोग के पीड़ित पर्याप्त रोगियों की वृद्धि हुई है और भविष्य में पर्याप्त दिखाई देती है। क्योंकि इधर इस स्थान में स्त्रियां भी तम्बाकू का यथेष्ट व्यवहार करने लग गयी हैं।

तम्बाकू महानशीली वस्तु है। मानव के लिए यह महाहलाहल विष है, परन्तु मनुष्य इसकी ओर ध्यान नहीं देता। तम्बाकू से-

१-निकोटाईन
२-प्रसिक एसिड
३-कार्बन मोनो-ऑक्साइड
४-पीरोडाईन
५-एमोनिया
६-कार्बोलिक एसिड
७-सल्फटन हाईड्रोजन
८-मथीलीमाईन
९-मार्शसगे
१०-निकोलाईन
११-ल्यूरीडाईन
१२-कोलीडाईन
१३-पारेवोडाईन
१४-कोरीडाईन
१५-रूपीडाईन
१६-वीरोडाईन
१७-पाईरोल
१८-फीर्मिक बोलडी हाइड
१९-फरफरोल

यह १९ विष हैं। इनमें चार पांच तो महाभयंकर विष हैं। डॉक्टर गाथ का कहना है कि निकोटाईन इतना भ ानक विष है कि इसकी एक बून्द भी उदर में पहुंच जाये तो तत्क्षण मनुष्य का प्राणान्त होजाये। प्रयोग करके देखा गया तो निकोटाईन की आधी बून्द से बिल्ली और एक बूंद से कुत्ता मर गया और आठ बूंदों से एक घोड़ा केवल आठ घंटों में मर गया।

''मेलसेन्स'' का कथन है कि सवा तोले तम्बाकू के धुएं में इतना निकोटाईन

है कि जिससे मनुष्य का प्राणान्त होसकता है।

तम्बाकू का धुआं गले की नसों से होकर मस्तिष्क और जिगर की ओर फैल जाता है। मस्तिष्क में गर्मी को उत्पन्न कर देता है। स्मरणशक्ति नष्ट होजाती है। पढ़ने को मन नहीं चाहता। पीनेवाले को मस्तिष्क-ज्वर होजाता है। जब तक धुआं मस्तिष्क में न जाये-आराम नहीं पड़ता। डॉ० गोर्जस का कथन है कि तम्बाकू अध्ययन का बन्द द्वार है। तम्बाकू पीनेवाले विद्यार्थी और अध्यापकों का ड्राइङ्ग खींचते समय हाथ कांपने लगता है। दृष्टि में भी महान् अन्तर होजाता है। जिस कमी को ऐनक लगाकर भी पूरा नहीं किया जासकता। ऐनक चाहे दो लगा दी जायें परन्तु उतना नहीं दीख पाता। रोगों की अभिवृद्धि होरही है। मृत्यु की संख्या बढ़रही है। केवल एक वर्ष की अवस्था में ही २५ प्रतिशत बालक कराल काल के कवल बन रहे हैं। शेग ७५ प्रतिशत बालक भी १०० वर्ष तक की आयु तक पहुंच जाते हैं यह बात भी नहीं है। इनमें से भी केवल ३५ प्रतिशत ही बालक ऐसे हैं जो ३० वर्ष तक की आए नक पहुंचते हैं। कहीं पर क्षयरोग है, तो किसी को कैंसर होगया है। कोई अन्धा होगया है तो कोई ऐनक लगा रहा है।

विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बिगड़ना तो एक कलंक है। विद्यार्थीजीवन तो मस्ती का जीवन है। प्रथम अवस्था में ही रोगों का शिकार होना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। यदि हमारे विद्यार्थी सुख सम्पन्नता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, यदि वह भावी भारत की उज्ज्वलता के प्रतीक बनना चाहते हैं तो तम्बाकू से दूर रहें। इसे हलाहल विष समझें। हलाहल विष ही नहीं उससे भी अधिक घातक, क्योंकि विष तो तत्क्षण प्राण लेलेता है, और यह व्यक्ति को सड़ा-सड़ा कर मारता है। स्कूल के ४०० छात्रों की परीक्षा लीगई, जिनमें २०० छात्र सिग्रेट बीड़ी पीनेवाले थे और २०० छात्र तम्बाकू का सेवन नहीं करते थे। परीक्षा में निम्न परिणाम निकला-

	रोग	सिग्रेट पीनेवाले	सिग्रेट न पीनेवाले
१.	धैर्यहीन	१४	१
२.	ऊंचा सुनना	१६	१
३.	स्मरणशक्ति का ह्रास	१२	१
४.	बुरी आदतें	१३	२
५.	ओछे व्यवहार	१२	१
६.	शारीरिक निर्बलता	१३	२
७.	चरित्रहीनता	१४	०

८.	मानसिक दुर्बलता	१५	१
९.	गुण्डापन	१६	०
१०.	रात्रिगामी	१	१
११.	वस्त्रों की मलिनता	१२	४
१२.	गन्दे	११	१
१३.	कार्यपराङ्मुख	१०	०
१४.	निम्नश्रेणीवाले	२८	३
१५.	कोई उन्नति नहीं	७८	२
१६.	अधिक आयुवाले	१८	२
१७.	असत्यवादी	९	०
१८.	कामचोर	१७	०
१९.	धीरे-धीरे बोलनेवाले	१८	६

ऊपरलिखित उन्नीस दोषों में सिग्रेट पीनेवाले छात्रों की भारी संख्या है और न पीनेवाले छात्रों की संख्या नगण्य है। यह थोड़ीसी संख्या भी इसलिए समझिए कि इनके माता-पिता सिग्रेट पीते होंगे।

ज० रिचर्डसन का कथन है कि जिन के माता-पिता तम्बाकू का सेवन करते हैं उनकी सन्तान अवश्य ही मानसिक और शारीरिक दुर्बलताओं का शिकार होगी।

एक प्रतिष्ठित चिकित्सक की सम्मति है कि मैंने आज तक एक भी ऐसा तम्बाकूसेवी माता-पिता नहीं देखा जिसकी सन्तान का स्नायु-मण्डल निर्बल न हो, उनका मस्तिष्क भी दुर्बल होता है।

मस्तिष्क में निर्बलता, उसमें विभिन्न प्रकार के रोग, अनिद्रा, आंखों के आगे तिरमिरे से दिखाई देना, अन्धापन, हृदय की धड़कन, कार्य में निरुत्साह, आलस्य, मुखदर्द, दांतों का गिरना, अपचन, गठिया का दर्द, गले का रोग, कान में फोड़े आदि रोगों की देन तम्बाकू ही है। यकृत्, मूत्राशय के रोग विभिन्न प्रकार के होते हैं। फ्रांस के सुप्रसिद्ध डॉक्टर जी० सेन ने ९ से १५ वर्ष तक की आयु वाले तम्बाकू सिग्रेट बीड़ी आदि का धूम्रपान करनेवाले बालकों का निरीक्षण किया, इन बच्चों का रक्तप्रवाह क्षीण होचुका था और हृदय का रोग होचुका था, पाचनशक्ति बिगड़ गई थी और इन्हें अलकोहल (मद्य) पीने की इच्छा होती थी, बारी का ज्वर आने लग गया था, रक्त के लाल परमाणु नष्ट होगये थे। नासिका से रक्त गिरता

था, रात्रि को भरपूर निद्रा नहीं आती थी और मुंह का स्वाद बिगड़ गया था। डॉक्टर ने इन बच्चों से तम्बाकू छुड़ाया और वे केवल ६ मास के उपरान्त स्वस्थ हो गये।

प्रो० रोफ ने म्युनिआयर्स के कैंसर इन्स्टीच्यूट में हजारों रोगियों की परीक्षा करके बतलाया कि इनमें बहुत ही बड़ी संख्या में फेफड़े गले मुंह और श्वास नाली के कैंसर के रोगी ८० प्रतिशत तम्बाकू का प्रयोग करते थे।

तम्बाकू का प्रभाव सन्तान की उत्पत्ति पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप तम्बाकूसेवी पुरुष के वीर्य के सन्तान उत्पत्ति करनेवाले कीटाणु मरे हुए पाये गये हैं। कितने ही विचारशील पुरुषों का अभिमत है कि तम्बाकू शराब से अधिक हानिकारक है।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि यदि शैतान की ओर से घोषित किया जाये कि मानवजाति को जो वस्तु सबसे अधिक हानि पहुंचाती है तो वह कौनसी है, उसे पारितोषिक दिया जायेगा तो यह अधिक सम्भव है कि तम्बाकू शराब को हरादे।

जिस पदार्थ को पशु भी न खाये उसका सेवन मनुष्य करे, यह लज्जास्पद है। मानव विवेक से काम ले।*

चाय

तम्बाकू के उपरान्त यदि किसी वस्तु का अधिक प्रचार हुआ है तो वह पदार्थ चाय ही है। चाय भारत ही क्या समस्त संसार का उत्तम पेय बना हुआ है। स्टेशनों की दीवारों पर, सार्वजनिक चौराहों पर, हस्पतालों और दुकानों पर, बस मोटर और ट्राम्बों पर, तथा समाचारपत्रों के पृष्ठों पर "चाय भारत का सर्वोत्तम पेय, शीर्षक विज्ञापन लिखा रहता है। किसान, मजदूर, राजा, रंक, दुकानदार, स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध इत्यादि सबको चाय पीने से स्फूर्ति आती है। चाय गर्मी में ठण्डक तथा सर्दी में गर्मी पहुंचाती है। ज्वर को रोकती है। बुढ़ापे को दूर भगाती है, शरीर में नवजीवन का संचार करती है। थकावट को दूर करती है, मस्तिष्क को ताजा करती है इत्यादि अनेक प्रकार की असत्य बातों का प्रचार किया जाता है।

लाखों रुपये प्रचार तथा विज्ञापन पर व्यय किए जाते हैं, विक्रयसाहित्य बांटा जाता है। गांव-गांव तथा कस्बों और शहरों में ग्रामोफोन पर गाने सुना-

*अधिक ज्ञान के लिए हमारी "हमारा शत्रु अर्थात् तम्बाकू" पुस्तक पढ़ें।

सुनाकर चाय का प्रचार करते हैं। चाय बनाना सिखाते हैं। प्रचारसमितियां चाय बनाकर बिना मूल्य के प्याले पिलाती हैं। इसी प्रकार बाजे बजाकर चाय का विज्ञापन किया जाता है। चाय का प्रचार नमूने की चाय बिना मूल्य के देकर चाय पीने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

चाय का वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। कहा जाता है कि चाय की जन्मभूमि चीन है। भारत में भी चाय आसाम, बंगाल, बिहार, मद्रास, पंजाब, उत्तरप्रदेश, मैसूर, त्रावनकोर, कोचीन में उत्पन्न होती है। भारत और लंका संसार में ९० प्रतिशत चाय उत्पन्न करनेवाले देश हैं। भारत में अंग्रेजों ने ही चाय की उत्पत्ति को प्रोत्साजन दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने चाय के सारे बागों को अपने हाथों में लेलिया था। आज भी चाय का धन्धा विदेशी पूंजीपतियों के हाथों में है। भारत प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपये की चाय विदेशों, मुख्यत: ब्रिटेन को भेजता है। लगभग ६० करोड़ की जनसंख्यावाले भारत में चाय की कितनी खपत होती होगी इसका अनुमान ही लगाया जासकता है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लगभग १ सेर चाय सन् १६६४ ई० में इंग्लैण्ड के तत्कालीन सम्राट् चार्ल्स द्वितीय को भेंट की थी। महारानी क्रैंपरीन को यह चाय बहुत ही पसन्द आई। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में इसका शीघ्र ही प्रचार होगया।

चीन में चाय का प्रचार बहुत पहले से था परन्तु योरोप में इसका प्रचार सतरहवीं और अठरहवीं शताब्दी में हुआ। तदुपरान्त इसका प्रचार बढ़ता ही जाता है। विज्ञापन के युग में अभी और भी इसका प्रचार बढ़ेगा ही। भारत के ग्रामों में भी चाय दूध के स्थान पर स्वागत समारोह पर दी जाने लगी है। सहभोज और सहपान के स्थान पर ''टी पार्टी'' नाम लोक-विख्यात होचला है।

''**दुग्धं वै बलम्**'' दूध ही बल है, पर विश्वास करनेवाला भारतीय चाय के पीछे दौड़ा जा रहा है। वास्तव में दूध के अभाव में ही चाय ने सिर उभारा है। नगरनिवासी यह समझते हैं कि हमें तो विशुद्ध दूध प्राप्त होना कठिन है, क्रीम निकाला हुआ दूध पानी होता है। उसमें भी ऊपर का पानी मिला होगा, वह भी पर्याप्त महंगा पड़ता है। एक चाय का कप तीन पैसे में आता है उतने दूध के लिए एक रुपया व्यय करना पड़ता है और वह भी विशुद्ध नहीं होता। चाय से थोड़े समय के लिए मस्तिष्क में चेतनता तो आती है, इसलिए चाय पीने लगे हैं। ग्रामीण भी नगरवालों का अनुकरण करने लगे हैं। विवाह आदि समारोहों पर दूध के लिए क्यों पैसे व्यय किये जायें, थोड़ी चाय से ही काम चलाते हैं परन्तु वह यह नहीं समझते कि चाय पीकर हम अपने स्वास्थ्य से खिलवाड़ कर रहे हैं।

चाय एक प्रकार से वृक्षों की सूखी हुई पत्तियां होती है। यह पत्तियां झाड़ी पर लगती हैं। चाय उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है। इसकी पैदावार के लिए ढालू भूमि तथा अधिक गर्मी तथा अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। भारत के पहाड़ी प्रदेश जहां पर वर्षा अधिक होती है, भूमि ढालू है, चाय बहुत अधिक उत्पन्न होती है। इसकी झाड़ियां पांच सात फीट ऊंची होती हैं। एक बार लगाने पर चार पांच वर्ष में चाय की पत्तियां आने लगती हैं और पच्चीस तीस वर्ष तक लगातार चाय की पत्तियां आती रहती हैं। पत्तियां तोड़कर छाया में सुखाने तथा कड़ाही में भूनने के लिए मजदूरों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। जहां पर मजदूर न हों चाय की पैदावार अधिक नहीं की जासकती है।

चाय की पत्तियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। लुशाई और कच्छार की पत्तियां एक फीट लम्बी होती हैं। आसाम की चाय की पत्तियां ६ ईंच तक लम्बी होती हैं। चाय मादक द्रव्य है, इसके पीने से हल्का नशा होता है। तीन विष होते हैं-

थीन, टेनिन, वोलेटाइन तेल इनमें से थीन एक तीव्र क्षार है। ज्ञानतन्तुओं के संगठन पर इसका बहुत ही उत्तेजक और विषैला प्रभाव पड़ता है। चाय के पीने से जो एक हल्का सा आनन्द प्रतीत होता है वह इसी क्षार का प्रभाव है।

टेनिन एक तीव्र कब्ज (अजीर्ण) करनेवाला पदार्थ है जिससे पाचनशक्ति बिल्कुल नष्ट होजाती है। उदर में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न होजाते हैं। नसों का सूज जाना, रक्त का इकट्ठा होजाना आदि। पुनः आप्रेशन की आवश्यकता पड़ने लगती है।

वोलेटाइन तेल में निद्रा को नष्ट कर देने की शक्ति है जिसके कारण से नेत्रों के अनेक रोग होजाते हैं। दूध घी के प्रयोग के समय में भारत में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने १०० वर्ष से अधिक आयु का उपभोग किया है, और आंखों की ज्योति ठीक अवस्था में रही है। कभी आंखें दुःखी भी नहीं हैं, परन्तु चाय के समय पांच छः छः वर्ष की अवस्थावाले बालकों की आंखों पर चश्मे (उपनेत्र) फिट करने पड़ते हैं। यह सब चाय महारानी की कृपा कही जा सकती है।

कहा जाता है कि बुढ़ापे में चाय स्फूर्ति को लाती है। परन्तु यह केवल भ्रान्ति है। यह विक्रेताओं का झूठा प्रचार है। वृद्धावस्था में चाय पीनेवालों को निद्रानाश, कम्पन, मस्तिष्क की गड़बड़ और हृदय की धड़कन आदि रोग होजाते हैं।

कहा जाता है कि चाय में गर्म पानी तो पेट में जाता है जो लाभकर होता है।

परन्तु पानी के साथ विष भी तो जाता है जो नशा करता है और विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। इस विषमय नशे को उत्पन्न करनेवाले पेयपदार्थों में ही मानव की आयु का ह्रास होरहा है।

चाय भी ऐसा ही पदार्थ है जिसकी आदत पड़ जाती है। आज घर-घर में चाय के पात्र मिलेंगे, लाखों रुपये कप प्लेटों पर व्यय होरहा है। आदत ऐसी पड़ती है कि दो आने प्रतिदिन कमानेवाला मजदूर भी जब तक एक प्याला चाय का नहीं पी लेता शान्ति नहीं होती।

बुद्धि और स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाले पदार्थों का प्रयोग एकदम बन्द कर देना चाहिए। झूठे विज्ञापनों के प्रचार की ओर सरकार का ध्यान भी जाना चाहिए, वास्तविकता के विपरीत विज्ञापन नहीं होना चाहिए।

चाय के साथ-साथ कोको, कहवा, काफी का भी प्रचार है। यह चाय से अधिक नशा करते हैं और चाय की तरह व्यवहार में लाये जाते हैं।

कोको में एक क्षार थियोक्रोमाइन होता है यह हृदय की धड़कन और मस्तिष्क की शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है।

कहवे में कैफिन नामक एक विष और अधिक होता है जो ७५% होता है, यह कड़वा विष है। यह हृदयगति को सुस्त कर देता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में ''यह पदार्थ राष्ट्र को डूबाने के लिए काफी उद्योग कर रहा है। इसने सहस्रों स्त्री पुरुषों की क्षुधा उड़ादी है। यह गरीबों का फालतू खर्च है।''

अफीम, गांझा, सुलझा आदि

अफीम भी एक मादकद्रव्य है। भारत में यह पर्याप्तरूप में उत्पन्न होती थी, भारत लगभग सात आठ करोड़ रुपये की अफीम चीन को भेजता था, किन्तु चीन से समझौता होजाने के कारण अफीम भेजना बन्द होगया है, इसलिए अफीम की उत्पत्ति को प्रोत्साहन नहीं रहा है, पुनरपि उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल और मध्यभारत के मालवाप्रदेश के राज्यों में थोड़ीसी उत्पन्न होती है।

अफीम के सेवन से अजीर्णता बढ़ती है, पाचनशक्ति नष्ट होजाती है, श्वास रोगों, दमा आदि को उत्पन्न करती है। बुद्धि को मन्द करती है, मस्तिष्क की शक्ति को नष्ट करती है और चिड़चिड़ेपन को उत्पन्न करती है। शरीर को सुखाती है।

तम्बाकू का सेवन बुरा है, परन्तु मनुष्य उसे छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है परन्तु अफीमची का अफीम छोड़ना बड़ा कठिन है। साधारण और सरल काम

नहीं है। अफीम खाने की आदत पड़ जाने पर बुरी दशा होजाती है। जब तक अफीम न मिल जाये तब तक संसार में कुछ नहीं सुहाता। अफीमची के स्नायुमण्डल सदा के लिए निर्जीव होजाते हैं। अफीम मस्तिष्क को मन्द करके ज्ञान-तन्तुओं को मूर्च्छित कर देती है। जब मस्तिष्क चेतनाहीन होजाता है तब श्रवणशक्ति स्वरेन्द्रिय और दृष्टि पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति ३ माशा अफीम प्रतिदिन खाता हो और उसे ३ माशा के स्थान पर २ माशा अफीम देदी जाये तो वह और एक माशा या एक माशा से अधिक लेने के लिए छटपटायेगा। यदि चार माशा अफीम दे दी जाये तो बड़े चाव से खाजायेगा। हां यदि बिल्कुल ही बन्द करदी जाये, एक माशा भी न दी जाये तो हताश होगा और बेचैन होजायेगा।

कहा जाता है कि अफीम बच्चों को शक्ति प्रदान करती है, युवकों को नष्ट करती है ओर बुड्ढों को सहारा देती है परन्तु यह सब बातें बुद्धि से परे की हैं। अधिकतर स्त्रियां जो खेतों या कारखानों में काम करती हैं वे अपने बच्चों को अफीम देकर सुला देती हैं, अफीम के नशे से बच्चा दो चार घण्टे तक चुपचाप पड़ा रहता है। परन्तु परिणाम बड़ा घातक होता है। अधिकतर बच्चों के जिगर खराब होजाते हैं, बच्चे सूख जाते हैं और वह विभिन्न रोगों के कारण अकाल में ही कराल काल कवल बन जाते हैं। उपरोक्त बड़ी भयानक बुरी प्रथा है। बुद्धिमती स्त्रियों को इससे दूर रहना चाहिए।

यह ठीक है कि किन्हीं रोगों में अफीम औषध का काम देती है। बढ़ते हुए सांघातिक लक्षणों को रोकती है। विशेपकर दर्द की वेदना को दूर करने में सहायक वस्तु है।

पूर्वीय देशों में अफीम का प्रचार बढ़ने का कारण पश्चिमी देशों के व्यापारी हैं। इन्होंने पूर्वीय देशों में अफीम आदि मादक द्रव्यों का व्यवसाय करके इनके महत्त्व को बढ़ा दिया है। पुनरपि अफीम की अधिक बढ़ोतरी का कारण अफीमचियों का संघ ही है। अफीमची लोग परस्पर इसका प्रचार करते हैं। अफीम की आदत नहीं छूटती यह बात तो नहीं है, कोई छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है परन्तु अफीम छोड़ने के लिए बड़ी भारी मानसिक शक्ति की आवश्यकता है।

अफीमची किसी बात को निश्चयपूर्वक नहीं कर सकता, उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ब्रिटिश सरकार यदि अपनी सेना में किसी को अफीम का सेवन करते देख लेती थी तो उसे तत्काल नौकरी से हटा देती थी, क्योंकि उसकी सेवा संदिग्ध समझी जाती थी।

अफीम के साथ ही गांजा, सुल्फा आदि भी नशा उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं। इन सबसे दूर रहना चाहिए। यह सब मनुष्य के लिए अभक्ष्य और अपेय पदार्थ हैं।

मीठा और मिठाई

ईख की खेती भारत में प्राचीनकाल से चली आई है, भारत में गन्ना और गन्ने का रस दैनिक प्रयोग में लिया जाता है। आजकल देशी गन्ने के अतिरिक्त कई प्रकार के बीज बना लिए गए हैं, परन्तु इन सबमें देशी गन्ना ही अच्छा होता है। अतः देशी गन्ने को चूसने और रस पीने के काम में लिया जासकता है।

गन्ने से ही गुड़ शक्कर, खांड और चीनी तैयार की जाती है। गांवों में गुड़ और शक्कर का व्यवहार बहुत अधिक होता है। चीनी की मिलों का देश में प्रचार होने लगा है। शहरों में चीनी अधिकतया प्रयोग में लाई जाती है।

गुड़ और शक्कर में उष्णता अधिक होने से ब्रह्मचारी और स्वास्थ्यप्रेमियों को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। देशी गन्ने को चूसने के काम में ब्रह्मचारी ले सकते हैं। खांड और चीनी अपेक्षाकृत गर्म नहीं होती अतः इनका प्रयोग गृहस्थ लोग साधारण रूप से कर सकते हैं। इनसे भी अच्छा मीठा मिश्री का होता है।

चाहे किसी प्रकार का भी मीठा हो बहुत थोड़ी मात्रा में भोजन के रूप में ग्रहण करना चाहिए। मीठे का प्रयोग करने से पेट और दांतों में अनेक प्रकार की बीमारियां पैदा होजाती हैं। इनका प्रभाव तात्कालिक मालूम नहीं होता परन्तु अधिक आयु में स्पष्ट प्रतीत होता है। ५० वर्ष की आयु से ऊपर गुड़ और शक्कर का प्रयोग साधारणरूप से किया जासकता है। जिन पदार्थों के खाने से उष्णता उत्पन्न होवे उन पदार्थों का ग्रहण ब्रह्मचारी लोग भूलकर भी न करें।

बाजारों में अनेक प्रकार की मिठाइयां तैयार की जाती हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होती हैं। राह चलते लोग मिठाइयों की सजी दुकानों को देखकर खरीदते और खा लेते हैं परन्तु इसका कुपरिणाम रोगों के रूप में भोगना पड़ता है। गृहस्थ लोग विवाह संस्कार आदि विशेष अवसरों पर घरों में भी मिठाइयां तैयार करवाते और खाते हैं। यद्यपि बाजारू मिठाई से यह मिठाई शुद्ध और अच्छी होती है परन्तु इसका प्रयोग भी अल्पमात्रा में करना चाहिए। खमीर उठाकर जो मिठाई बनाई जाती है उसका खाना तो स्वास्थ्य को नष्ट करना ही समझो।

मिठाइयों का लोभ लवण की भांति व्यापक तो नहीं है परन्तु अवसर होने पर अधिक मात्रा में मिठाई को खालेने से हानि की कम सम्भावना नहीं होती।

मधु (शहद) का मीठा औषधियों का सार होने से ग्राह्य है, परन्तु यह भी उचित मात्रा में खाना चाहिए और सर्वदा नहीं। ऐसे ही खजूर आदि से भी मीठा बनता है जो कि अन्य मीठों की भांति ही प्रयोग में लेना ठीक होता है।

सार यह है कि ब्रह्मचारियों और स्वास्थ्य के अभिलाषियों को इसके लोभ से बचना चाहिए।

उपसंहार

बुद्धि और विवेक से काम लेना मानव का धर्म है, जो-जो पदार्थ सात्त्विक लाभकारी और भक्ष्य हैं उनका ही सेवन करना चाहिए, शेष सभी हानिकारक पदार्थों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होकर मानव अपने चरमलक्ष्य मोक्ष या ईश्वर तक पहुंचने में समर्थ होसके। मानवीय देह की इसी में सफलता है।